

प्रकाशक
मित्र प्रकाशन प्राइवट लिमिटेड
इलाहाबाद ।

मूल्य
चार रु

६१६१ १५ -

पंडित
बीरगुप्तनाथ चौधरी
भावा प्रग प्राइवट लिमिटेड
इलाहाबाद ।

प्रस्तावना

'प्रस्तुत पुस्तक 'इस्लाम के सूफी सायब' निकलसने कृत 'दी मिस्तिक्स आव इस्लाम' का हिन्दी रूपांतर है। इस पुस्तक को विद्वान लेखक ने अविराम गति से बीस वर्षों में अथक परिश्रम द्वारा तैयार किया था। इसका एक प्रमाण यह है कि विदेशी लेखक ने जो कुछ कहा है उसको प्रामाणिकता के आधार पर। उन प्रमाणों को ढूँढ़ कर जटाने और उनका यथास्थान उपयोग करने में उसे कितना सजग अध्ययन करना पड़ा होगा इसका सट्टा ही अनुमान किया जा सकता है। इस पुस्तक के अध्येता को यह अनभव होते बेर न लगगी कि इसका मूल्य और उपयोग जो प्रारम्भ में रहा होगा वही आज भी है। इस विषय के जितनासु अथवा अध्येता के लिए यह समझ नहीं कि सूफीमत का अध्ययन करते समय इस पुस्तक की उपेक्षा कर जाय वसी दंगा भ उसका ज्ञान सीमित अथवा अपूरा ही समझा जायेगा। यह पुस्तक परिष्कृतात्मक मात्र नहीं है अपितु स्पष्ट एवं सुवोध दली विषय-बोध कराने वाली है। इसके द्वारा सद्बान्तिष बातों को दृढपणम करना सुगम हो जाता है। जो पाठक अरबी तथा फ़ारसी के विद्वान नहीं हैं अथवा जिन्हें इस विषय के मूल ग्रन्थ सुलभ नहीं है उनर लिए यह पुस्तक अद्वितीय है।

(६)

इस अन्याय के विषय में सहृदय पाठक ही अपना निजय लेंगे । मैं अपनी बात जानता हूँ कि यह धर्मसाध्य कार्य किसी अटूट प्रेरणा द्वारा ही सम्भव हो सका । परन्तु मैं जो उद्धरण आया है उनमें से कई इस अन्याय प्रथ में मूल रूप में मिलेंगे । इन्हें जटाने और उनका यथास्थान उपयोग करने का सम्पूर्ण ध्येय भाई श्रीकृष्ण दास जी को है । मूल उद्धरणों को प्राप्त करने में डा० एजाय हुसेन साहय तथा हाकिम गुलाम मुतज साहय से भी बड़ी सहायता मिली । एतदर्थ इन गुरुजनों को धन्यवाद ।

अन्त में मैं उन सभी लोगों के प्रति अपनी हासिक आभार प्रकट करता हूँ जो जाने-अनजाने इस अवसर को साने के निमित्त बने ।

—नर्मदशरथ चतुर्वेदी

१८१४ ए पुरयोत्सवमगर
इसराबाद ।

उन प्रगुद्ध प्राणियों को जिनके लिए
स्नेह-सद्धानुभूति
शिष्टाचार के अंग मात्र हैं ।

भूमिका

सूचीमन निदर्शी तथा विनाशीय वातावरण में प्रादुर्भूत हाऊर भी अपनी निरापत्ताओं व कारण अन्याय दशा व धार्मिक जीवन का विशिष्ट अंग बन रहा । भारतवर्ष को भी अरबों उग्र एवं उग्र महति व कारण उस अपमान में कोई हिचक न हुई । यह एक विनम्र विरागमास है कि जिस जाति का मत्ताधारी वग शत्रुबल द्वारा जय-यात्रा का अभियान कर चुका था, उसी जाति का एक समुदाय आभय व सहार पीड़ित और प्रतापन जनता व घरों में प्रेम का सदश पहुँचा कर उन्हें सन्तुष्टता हास्य वसामृत कर रहा था । उसकी सफलता का रहस्य इसी में है ।

भारतवासियों को सुन्नियों व उपदेश एकदम नये नहा लग । इससे विनम्र उन्नत सिद्धांतों तथा मतवादों का प्रचार पहल से ही यहाँ होता आ रहा था । अतएव उन्हें हृदयगत करने में इन्हें कोई विशेष कठिनाई नहीं हुई । 'आमयन् सदाभूतम्' अथवा 'समुधर कुटुम्बकम्' का चिन्तन करने वालों का प्रेम का मार्ग अविच्छिन्न नहा जान पड़ा । इसी कारण परस्पर भाव-वारे का व्यवहार हात अधिक दूर नहीं लगा । हिन्दुओं हाग भी पीर पैगम्बर तक की पूजा हात लगी ।

विग्रहात्मक व आत्मरक्षा व निमित्त निमित्त मध्य करने वाले भारतवासियों का यह सममन अधिक दूर नहीं लगी थी कि अरबों मन्थन पर निर्भर नहीं किया जा सकता । अपने आत्मत्व की रक्षा — लिए वे आत्मरक्षा की आरंभ और उन्नत आचार्य का पन्ना पकड़ा । हमारे मन पर सुदूरवर्ती दशों तरफ से मद्भाग स्थापित करने में उन्हें जो सफलता मिली यह उनसे लिए मूल्यांकन सिद्ध हुई । इस सफलता का एक

संस्कृतिर महत्त्व भी था जा किसी भी गजनीतिर विजय से कदापि पर कर न था । फलस्वरूप अपनी व्यापक पर उठार प्रवृत्ति के कारण किसी का भी आत्मसात् कर लेना उनसे निष्ठ अधिक सहज था । इस अभ्यात्म जीवन का दमन का भी उक्त मिश्रता गया जिस कारण नयी शक्ति तथा प्रगतिशील चेतना का अभ्युदय संभव हुआ ।

यूनिक्स के प्रादुर्भाव तथा प्रसार का 'सुग' ऐसा था जब कि अथ १५२५५ के कारण आमा और परमात्मा के बीच व्यवधान उपस्थित हो चुका था । कमराहने और चमकारों के बीच जनता स्तब्ध तथा हत प्रभ थी । भारतवर्ष में नयी चेतना-आत्मगर्भ-का सन्देश ऐसे अवसर पर दूसरे जन मानस के आन्दोलन के लिये और मानस मन में नयी आस्था तथा नये विश्वास का जगृत कर दिया । इससे सदस-बोहको १५५५५५ की बाधाओं और कठिनाइयों की उपलब्धि कर पाम-पदान तथा दुर्गन्धी लोको तक में अपने अपने मित्रान्तों और मतवालों के प्रचार लिये ।

दूसरे लोको के संस्कृत में आत्मा का एक निश्चित परिणाम यह भी हुआ कि ये उनसे प्रति अधिसाधिक उठार तथा माहप्यु बन गए । अरुनी योने मुनात-मुनात के दुर्गों की मुना के भी अभ्यस्त हो गए । ये दूसरे के प्रति अनुसार न रहे गए । इस प्रवृत्ति के कारण एक और १५५५५५ तथा दुर्गन्धी लोको-पुत्री मूमाग में जा पहुँचे, यहाँ दुर्गों और इस्लाम प्रचलन माहप्यु प्रवृत्ति के संस्कृत में भी आया । इस प्रकार भारतवर्ष विभिन्न संस्कृतियों का संस्कृत-गण बन गया । विगत एक मित्रो पुत्री संस्कृति का विस्तार हुआ । उन लोको लोको के पुत्री भाग में मुस्लिम शासनका कठिना और धर्मोपदेशका का ज्ञान था जिसका गुरु प्रभाव भारत पर भी पड़ा । विविध समुदाय प्रवृत्ति और अरुणी पक्ष विगत की लोको अनुगत हुआ तथा यहाँ सन् १५५५५५ इसी तक लोको इस्लाम का भाग बनी रही ।

मृगीयत—शुद्धापरस्ती के लिए काम करना शुद्धा के नाम पर सब कुछ त्याग देना, सामाजिक बंधन बिना छूट तथा घुरे कामों से विमुख रहना सुख का निनाश नि देना, मानवी आकांक्षाओं के सामान्य साधन धन तथा मत्ता से दूर रहना और सामाजिकता का छोड़कर शुद्धापरस्ती में निरत रहना, सुखोपलब्धि के य मोलक अद्वान्त के जिनसे प्राचीन काल में चलन था । उन दिनों यह एक प्रकार के विरक्त संन्यासियों का समुदाय मात्र था ।

जब विरक्ति मायना के पीछे और जो भी कारण रहे हों एक प्रयत्न कारण यह भी है कि प्रथम बार ज्ञानीश्वरों के शासन काल की स्थिति अत्यन्त दुष्कर एवं भयावह थी । उन्मत्त जनताओं के आतंककारी शासन से कष्ट कर कष्ट शुद्धा ग्रहण के सुखमान आत्मा की शान्ति के लिए सामाजिक बंधन से हटकर एकान्त जीवन व्यतीत करना पसन्द करने लगे ।

ऐसे संन्यासियों में वसुध के हसन (सन् ७२५ ई.पू.) का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है । हिजरी सन् की प्रथम शताब्दी के अन्त में इन परान्तवासियों में से एक ऐसा समुदाय भी निकला जो परान्त से बहरा ध्यान और ध्यान के आग इलहाम तथा हल अथवा मायामाद की स्थिति तक पहुँच गया । ऐसी स्थिति में इन संन्यासियों द्वारा धर्म त्याग तथा द्वायन्य स्थिति अथवा ग्रहण को अपने आप में पक्षधर नहीं समझा जाना था अतः शुद्धापरस्ती के प्रति आत्म-निरपेक्ष भक्ति की आवश्यकता नहीं जानी थी । इस प्रकार सामाजिक स्थितियों का त्याग के लक्ष्य के भौतिक अर्थ में अर्थ परित्यजन आ गया ।

परमार्थवादी संन्यासी मूर्तियों के लिए अहिंस्य का आग्रह करना भारत के इतिहास में ही इच्छा मात्र का अभाव बन गया जिसका सुचना इन्द्र तथा भगवतीय मन्त्रों से की जा सकती है । 'गान्धी हाथ और गान्धी गा' इनका मुहावरा बन गया । ऐसे संन्यासी मूर्तियों में इन्द्रादीन प्रथम (मृत्यु काल सन् ७८१ ई.पू.) प्रमुख थे । मृगीयत और भीरा गहरा

की श्राव प्रवृत्त हुआ। इससे पहले वह कुगन की कुछ विशेष श्रायतः (५, १७) तथा परम्पराओं पर श्राश्रित था। हिज़री सन् की दूसरी शताब्दी से ये सूफी कहला कर प्रसिद्ध हुए।

सूफीमत श्रुदा व नूर के प्रति मुहब्बत का भाव लेकर चला है। प्रेम व प्रश्न पर ही पूर्व और पश्चिम का भेद समाप्त होता है। गृह्यवादी प्रवृत्ति का विकास श्राश्रयी शताब्दी से लेकर पन्द्रहवीं शताब्दी के बीच ससार मग म विरोध रूप से हुआ है। भारतगसी कबीरादि हों अथवा ईरानी जलालुद्दीन रूमी अथवा यूरोप व अन्य इसाई सत सभी के हृदयों में एक ही भावधार प्रगहित हो रही थी।

परिस्थिति—कहा जाता है कि मुहम्मद साहब की मृत्यु व सौ वर्ष पीछे तक इस्लाम म सन्यास और तपोनिष्ठ जीवन का अभाव था। परन्तु कुगन म पाप तथा पंथले व दिन व भय तथा श्रातक व प्रसंग में तो चेतना फूँकी गई है वह कदाचित् उक्त भावना के उद्भूत का प्रथम उगाहण है। यहूदी तथा ईसाई धर्म गुरुग्रा व बीच प्रचलित 'नफ़सकुशी' व प्रति मुहम्मद ने अपने अनुयायियों को सजग किया था। प्राचीन काल व मुसलमानों द्वारा सूफी 'अल-सहवा' तथा 'अल-तविउन' समझे जाते थे और परवर्ती काल में उन्हें सत्य तथा मोक्ष का साधक माना जाने लगा।

जिन दिनों सूफीमत का उद्भव हुआ उन दिनों मध्य एशिया में बौद्ध धर्म-अध्याय तथा रम-गिवाज़ भी यहाँ प्रचलित थे। ऐसी दशा म हम पर उनका प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी था। कुछ लोग इसका भारतीय मूल ध्यान में देखने का श्राग्रह करते हैं, क्योंकि हमारी कुछ याँ भारतग चिन्ताधारा से मिलती जुलती हैं। अतएव इसका अनुगार उनका मूल म जोड़ न का एक सूत्रा अग्रय हानी चाहिए। हमका समर्थन में एक तक नौराग्या व समय छुटा शताब्दी म परस्पर हुए विचार विनिमय द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। परन्तु जहाँ तक पता है ईरान व धार्मिक तथा सामाजिक जीवन पर भारत का कोई विशेष प्रभाव नहीं

सूफीमत—शुद्धापरस्ती के लिए काम करना, खुदा के नाम पर सब कुछ त्याग देना, सामारिक वैभव-विनाश तथा बुरे कामों से विमुख रहना मुक्त को तिलाजलि देना, मानवी आकांक्षाओं के सामान्य साधन धन तथा सत्ता से दूर रहना और सामाजिकता को छोड़कर शुद्धापरस्ती में निरत रहना, सूफीमत के ये मौलिक सिद्धान्त थे जिनका प्राचीन काल में चलन था। उन दिनों यह एक प्रकार के विरक्त सन्यासियों का समुदाय मात्र था।

इस विरक्ति मायना व पीछ और जा भी कारण रहे हों, एक प्रथम कारण यह भी है कि प्रथम बार स्वर्गीयताओं के शासन काल की स्थिति अत्यन्त दुष्कर एवं भयावह थी। उमय्यद स्वर्गीयताओं व आतङ्कारी शासन से ऊब कर कई शुद्ध मूर्ति व मुसलमान आत्मा की शान्ति व लिए सामारिक पक्षों से हटकर परान्त जीवन व्यतीत करना पसन्द करने लगे।

ऐसे सन्यासियों में बसरा व इसन (सन् ७२६ ईसवी) का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। हिजरी सन् की प्रथम शताब्दी व अन्त में इन परान्तवासियों में से एक ऐसा समुदाय भी निरन्ता जा परान्त से बहरा ध्यान और ध्यान व आग इल्लहाम तथा हाल अगवा भावाभाद की स्थिति तक पहुँच गया। ऐसी स्थिति में इन सन्यासियों द्वारा समस्त त्याग तथा दारिद्र्य स्वीकृति अथवा प्रहण को अपने आप में पल्लव नहीं समझा जाता था अपितु शुद्धापरस्ती के प्रति आत्म-निर्गुण भक्ति की अभिव्यक्ति मानी जाती थी। इस प्रकार आरम्भिक शिनों का त्याग व पक्ष व भौतिक श्रेष्ठ में श्रेष्ठ परिवर्तन आ गया।

पश्चात् काशीन सन्यासी मूर्तियों व लिए दारिद्र्य का आग्रह घना भाव व हास्य उभरी इच्छा मात्र का समार बन गया जिसकी मुक्तता इमर्द तथा मागनीय नहीं है। 'गामी हाथ और गामी गत' इनका मुसलमान बन गया। वेग सन्यासी मूर्तियों में इलाहीय आग (सन् ७८३ ईसवी) प्रमुख व। सूफीमत धीरे धीरे रहस्यपूर्ण

को श्राव प्रवृत्त हुआ। इससे पहले यह कुरान की कुछ विशेष आयतों (८, १७) तथा परम्पराओं पर आभिन था। हिज़री सन् की दूसरी शताब्दी से ये सूरी कहला कर प्रसिद्ध हुए।

सूफीमत खुदा के नूर के प्रति मुहब्बत का भाव लेकर चला है। प्रेम के प्रश्न पर ही पूरे और पश्चिम का भेद समाप्त होता है। रहस्यवादी प्रवृत्ति का विकास आठवीं शताब्दी से लेकर पन्द्रहवीं शताब्दी के बीच समाप्त होने में विशेष रूप से हुआ है। भारतवासी कबीरादि हों अथवा ईरानी नलासुनीन रूमी अथवा यूरोप के अन्य 'संत' सब ममी के हृदयों में एक ही भावधार प्रवाहित हो रही थी।

परिस्थिति—कहा जाता है कि मुहम्मद साहब की मृत्यु के चौ वर्ष बाद तक इस्लाम में सन्वास और तपोनिष्ठ जीवन का अभाव था। परन्तु कुरान में पाप तथा पैसले के दिन के भय तथा आतंक के प्रसंग में जो चेत्ना फूँकी गई है वह कदाचित् उक्त भावना के उन्नेक का प्रथम उदाहरण है। यहूदी तथा ईसाई धर्म गुरुओं ने बीच प्रचलित 'नफ़सदुशी' के प्रति मुहम्मद ने अपने अनुयायियों को सजग किया था। प्राचीन काल में मुसलमानों द्वारा सूफी 'अल-सहवा' तथा 'अल-नविउन' समझे जाते थे और परवर्ती काल में उन्हें सत्य तथा मोक्ष का साधक माना जाने लगा।

त्रिन जिनो सूफीमत का उद्भव हुआ उन दिनों मध्य एशिया में बौद्ध दल-कथाएँ तथा रहस्य-विद्या भी यहाँ प्रचलित थे। ऐसी दशा में इस पर उनका प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी था। कुछ लोग इसका मार्गीय मूल घण्टन में स्नेह का आग्रह करते हैं, क्योंकि इसकी कुछ बातें मार्गीय विन्यासाग से मिलती जुलती हैं। अतएव हमें अनुमान उनसे मूल में कोई न कोई एक सूत्रना अवश्य हानी चाहिए। इससे समझने में एक तक नौगरवाँ के समय छठी शताब्दी में परस्पर हुए विचार विनिमय द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। परन्तु जहाँ तक पता है इसमें के धार्मिक तथा सामाजिक जीवन पर मार्गीय का कोई विशेष प्रभाव नहीं

पड़ा था। यह यहाँ पहुँचा सर था, प्रभाव न डाल सका था। अन्त उम्मीद
 न पूरा मारत व विषय म इसान वाले शायद ही कुछ अधिक जानते
 रहें। इस समय तक सूचीमन अपनी प्रारम्भिक अवस्था पाए कर चुका
 था। इसलिए उस योद्धा द्वारा प्रभावित होने का तक निम्न तथा
 निराधार प्रतीत होता है। यह यदि सच हो भी सकता है तो किसी सीमा
 तक भारतीय सूचीमन व सम्भव है। इससे विपरीत सूचीमन न मय
 कालीन भक्ति आन्दोलन को बहुत कुछ प्रेरणा प्रदान की है।

कुछ लोग सूचीमन का सम्बन्ध मानानियों व समय व जोड़ना चाहते
 हैं। परन्तु हमारा का पुत्र प्रमाण नहीं है। मुहीउद्दीन इब्न अरबी
 और इब्न उल-अरीद जैस कुछ अरबी सूफी भी यह हैं। जिनके अंगन व
 इराक़ी और जामी जैस मुठियों को बहुत कुछ प्रभावित किया है। निर-
 लमन भी माउन की भाँति इसका व य मानव मस्तिष्क की स्वाभाविक
 इच्छा की अभिव्यक्ति मानते हैं जो सभी देशों में व्याप्त है।

मुगलमान विचारक इसा की नवी शताब्दी में ही नव अस्फ़ातूनी
 विचारधारा से परिचित हो चले व और वे अरस्तू की बुनियाँ का ध्यान
 में रख कर पण करने लगे। इसलिए संभव है प्रारम्भिक अवस्था में सूफी
 मन को आत्मा और ब्रह्मात्मा व मिलन की माननीय इच्छा व ही कल
 स्वरूप अस्तित्व में आने की प्रेरणा मिली हो, किन्तु आगे चल कर हमारी
 अपनी एक स्वतंत्र पद्धति बन गई जिसमें मूल में नव अस्फ़ातूनी तथा
 अन्त्यान्त विचारधाराओं का भी योगदान रहा है। अरब वालों ने जिन
 दिनों सीरिया पर आक्रमण किया था उन दिनों सीरिया वालों द्वारा
 प्लागिन्स व विचारों का अध्ययन किया जा रहा था।

पाश्चात्य काल इसा की आत्मा शताब्दी व अन्त में सूफीमत में
 नये लक्षण प्रकट हो गए। शीखीय मतों तथा धरान मानान्यवन
 का गहन अध्ययन और नास्तिक विचारधारा प्रकट करने लगी। एक
 मुठियों में सम्मिलित कर जैस सूफी का नाम गिनारा जाया है जिसका
 मन्त्र विचारों व अनुशासन द्वारा रहित है। इस दिनों इस्लाम पर

इलानिक सस्कृति का विशेष प्रभाव था, जबकि यूनानी विचारकों की धर्मियों का अनुवाद अनुशीलन तथा अध्ययन किया जा रहा था। पनस्वरूप सूफीमत पर इस्लाम से बाहरी दाता का भी प्रभाव पड़न लगा था। इसमें तौबा, मावाया तथा नाभिफ मन का प्रत्यक्ष स्थान का भय धुननन भीभी को दिया जाता है। दाउतुइ य अनुपाधी सूफियों में पुनर्करण की प्रवृत्ति जाग्रत हुई और य मर्याममारी सिद्धान्त य पारक घन गए। दायज़ीन य गुन स्थित य अम्र अली य। मनातनी सूफी इहै काफिर कहन लग य। य अपन को तुन स अभिन मानन य और अरनी पूजा करन का सुझाव दंत य। इस मर्यामय म सर्वाधिक प्रसिद्ध जसन मसूर है जिहै इल्ताज़ कहन की परंपरा ह। इसमें इरानी या और मसूर उमर पिता का नाम था। इल्ताज़ का बुद्ध लागा न प्रच्छन्न मनाइ बनलाया है, क्योंकि उसन इना का अच हई अथान इश्वर का सच्चा प्रतिनिधि कहा ह। उमर अनुमान मुहम्मद नदियों में भेष्ट है, जबकि इना मता म मरीच है। उमरा 'अनचहई' का सिद्धान्त विशेष रूप म उल्लेखनीय ह। भाग्याइ विचारधारा म दया तथा माननी प्रवृत्ति का यत्न करन य लिए जो शब्द प्रयुक्त हुए हैं य ठीक वही हैं या इल्ताज़ द्वारा प्रयुक्त 'लाहून' और 'नासूत' य भाव दाग प्रस्ट होते हैं।

पुनरावर्तन—परन्तु इमाम अल-गज़ाली के समय तक सूफीमत की स्थिति पुन सुन्न हो गई और इस्लाम म इसका एक निश्चित स्थान बन गया। गज़ाली की 'हुक्कतुल इस्लाम' अर्थात् 'इस्लाम रक्त' का स्थान मिला था। उसन अनुभव किया कि तुलू और उसर पमल का मय शायत है। उसन अनुमति पर अधिक बल दिया और दर्शन तथा अनुमान को गान समझा। इस प्रकार उसरी प्रणाली तत्परक बन गई और यह अपन युग य बौद्धिक स्तर का प्रतीक बन गया। उसन मनातनी इस्लाम य अनुभव सूफीमत की व्याख्या की। आचार्यनाधी कई मानों को लेकर गज़ाली की इमा म न अधिक समानता है। उसमें

धार्मिक तथा आध्यात्मिक पक्ष प्रयत्न है। यह सब होते हुए भी उसने 'तौहीद' सिद्धान्त में कुछ श्रुतियाँ रख गइ हैं।

सागह्वीय शताब्दी शताब्दी तक का समय मुस्लिम पुनरुत्थान युग का था, जबकि ज्ञान विज्ञान के प्रायः सभी क्षेत्रों में पुनर्विचार और नये निष्कर्षों का कार्य जारी था जिसका एक परिणाम कला और साहित्य के क्षेत्र में भी लक्षित हुआ। इस कारण सूफीमत के लिए यह कलात्मक युग कहना कर प्रसिद्ध हुआ। इसी युग में इब्राहिमीन अचान, जलालुद्दीन रूमी और शम्स सादी जैसी तीन रहस्यवादी कवि इरान में उत्पन्न हुए। इन तीनों की रचनाओं का मुस्लिम जगत पर बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा।

सूफीमत के विकास का अन्तिम चरण हसीन और जामी के साथ पूरा होता है। इसी काल का महमूद शारिफ़ की रचना 'गुलशने राज़' है जो वास्तव में सूफीमत के धार्मिक शान्ति के प्रतीक के रूप में साराय माना है।

इसमें लक्ष्य किया है कि सूफीमत में बहुत पहले से नये तथ्यों तथा संशोधन प्रयत्न पाने लगें थे। इसका एक कारण इसका व्यापक प्रचार एवं प्रसार में निहित है जिसके द्वारा नये-नये विचारों का प्रसार हुआ था। पश्चात्कालीन नये-नये विचारों के अन्तिम में आने लगें थे। सागह्वीय शताब्दी तक इनके सुसंगठित रूप देगान में आने लगते हैं। प्रारम्भिक युग में लोग नये विचारों पर आसक्ति रख कर ता शरीरी वीरता-साधन करने लगें थे उनमें इद-गिज़ मन्तों की भीड़ जुटने लगी। एक लोभाल गल्ल कहला कर प्रसिद्ध हुए। भक्तों में परमेश्वर भानु-भाव उत्पन्न होना लगा और उनकी अर्चनाएं परमेश्वरी स्थापित हो गई। अनेक जगहों पर ही एक महामाया थी। धीरे-धीरे उनमें लिए विराम गृह नैसर्ग द्वारा लगे जा आते बलवत् स्थानवाद का रूप ले लिए। आत्मा ही नहीं शताब्दी के स्थानवाद दमिररुग और गुलशान में पाए गए हैं। इनका उद्देश्य अविश्वसनीयता में दृष्टा करणा था। परमेश्वर के अनुपात के अनुसार काय के अनन्तर अन्तर्गत भी अन्तर्गत स्थानवाद कहना कर प्रसिद्ध हुए जिसका अभिप्राय परिहार उ

होता था। ऐसे ही परिवार आगे चल कर साम्प्रदायिक रूप धारण कर लिये जिनका लगाव गुरु अथवा मुशिद रूप में संस्थापकों से हुआ करता था।

उत्तरापिणार—कुशन में सूरीमन का बीज रूप में सकेन मित्रने से दोनों इस्लाम और सूरीमन की प्राचीनता में कोई सन्देह नहीं रह जाता और इन मन्त्रों में इज़ान मुहम्मद का भी नाम लिया जान लगता है। इनके बाद आने वाले नामों में अली का नाम सबसे पहले आता है। यद्यपि लगभग पौन दो सौ सम्प्रदायों में सौ तीन बिस्तामिया अन्ताशिया और नक़्शबन्दिया वाले श्रवू बकर को सब प्रथम स्थान देते हैं। इनमें से शबन नक़्शबन्दिया से भारतवासी अधिक पाये गये हैं। इससे बाद नक़्शबन्दिया वाले अपना सम्बन्ध अली से जोड़ लेते हैं। इस प्रकार अली की जा स्थान प्राप्त है वह अन्य किसी को नहीं। यद्यपि मुनी मुसलमान अली को चौथा स्थान दत्त हैं और इसके पहले तीन स्थानी पाओ श्रवू बकर, उमर और उस्मान को महत्व का मानते हैं। अली उन हुजियी तथा जुनेद न अली की बनी सराहना की है। अली के बाद बसरा के इसन का नाम सर्वोपरि है। उनसे सत्तर शिष्यों में स बार व्यक्ति उनसे मृत्यु के बाद पीर नियुक्त हुए थे, यद्यपि इनसे नामों को लेकर झगड़ियाँ में मतभेद है। किन्तु इससे इसन की स्थिति में कोई अन्तर नहीं आता और वे ज़ान्गिया, चिरिनिया तथा मुहम्मदादया इन तीनों के आचाम गुरु मान जाते हैं। उनकी मा मुहम्मद साहब की एक पत्नी की दासी थी और वे स्वयं बसरा निवासी राबिया के समकालीन थे। उनसे दस शिष्य ग़याज़ अम्दुन यहिद ज़ैद और हनीज़ुल अज़नी दो विभिन्न सम्प्रदायों के मुखिया हुए। इनमें से ज़ैदिया सम्प्रदाय के बार और उन विभाग हो गये इयादया, अथमिया, हुबगरिया तथा चिरिनिया इसी प्रकार हकीबशा, मन्दाया के भी आठ उपविभाग हुए करिया, गज़निया, तपतुनिया, जुनदिया, गज़रनिया, तरतनसेया, मुहम्मदिना और विरदीनिया अथवा फुवरिया।

भारतवर्ष में सूफीमत

प्रवेश—भारतवर्ष में इस्लाम का प्रवेश पाने का तीन ही भाग हो सकता था । जहाँ माग स्वयं गंग और गङ्गा का था । उन जिनों भारत वर्ष खोजता न था । इन्हीं भागों से हाकर सूफियों तथा शरियों ने यहाँ प्रवेश पाया होगा । इतिहास का जहाँ तक पता है भारतवर्ष में इस्लाम मध्यप्रदेश अथवा व्यापारियों का साथ साथ मालाबार तथा पर पहुँचा था । यहाँ पहुँचने का एक अन्य साधन पारंगतक साधु महात्माओं का भी हो सकता था । कहा जाता है कि मदीन अमावी ऐम ही एक महात्मा थे जिनकी कत मयनापूर में बनी हुई है । लोगों की यह धारणा है कि ये मदीना में मीरियों में थे । ऐमा लगता है कि उन जिनों कीन से लेकर लंका तक में प्रचारकाय चल रहा था । जहाँ उनका प्रचारकों के मकसद पाये जाते हैं । इन बन्तों ने लंका में ऐम का मकसद किया था । मुहम्मद बिन क़ासिम ने मिर्च आक्रमण का पुत्र का काइ अग्रोप ऐमा नहीं मिलता जिसमें मुस्लिम बन्दियों का पता चलता है । यद्यपि इससे पूर्व भारत में मुसलमानों का सम्पर्क स्थापित हो चुका था । मुहम्मद की मृत्यु का तीस वर्ष बाद ककड़ में मुसलमानों ने भारी सना पुत्र रली थी जहाँ से इस्लाम भारत के प्रवेश द्वार तक पहुँच गया था । लैबर जों से हाकर दुक, मगान और अजगान सेनाएँ भारत में प्रविष्ट हुई जिनका साथ साथ मुस्लिम मयामियों और शरियों का भारत में आगमन हुआ । इस प्रकार भारत में मुस्लिम सन्तान कायम होने का पहला ही इस्लाम से भारत का प्रविष्ट हो चुका था । इन सबका एक परिणाम यह हुआ कि नये मकसद का कारण हिन्दुओं तक का कई जय पण तथा सम्प्रदाय बन गए । हा टिमन का मगसद एम नामों को गिनाया है । इनके आगमन काय का लंदन का यम तथा सम्प्रदाय यह है । पोरताना, दुर्रु, पानी, जलनी लंदन आदि इन्हीं का य है । महमूद गज़नवी का गांगी

रा दाद लाहौर के शहीदों का नाम आता है जिन्हें भाग्य
 में सब प्रथम सूची के रूप में हम जानते हैं। बाबा गनन का नाम एम
 हिन्दू महासाधियों में लिया जाता है ता मुहम्मद साहब से मिले थे और
 ता बाग मकका भी गया था। बाबा तन्वर एक ऐसी ही प्रसिद्ध नामी महिला
 थी। उनकी कब्र लाहौर में स्थित है। पाँच नामों की अन्य
 साहिलाना के नाम जिनकी कब्रें वहाँ दनां हुई हैं हम प्रसार हैं—(१)
 बाबा गनिका अथवा बाबा हाव, जो जलना की पृथ्वी बननायी जाता है।
 (२) बाबा हूर () बाबा नूर (४) बाबा गौहर (५) बाबा तान (६) बाबा
 शाहनाज़। इनमें से अधिकांश इन के शाही वंश की लक्ष्मियों थीं ता
 अली के सग-सम्राट्ठियों से व्याही थीं। इनमें से बाबा तन्वर उपर्युक्त
 चार में काम करता थी। इनमें सम्प्रदाय में कानून कयाँ प्रचलित
 है। इन कतिनामों का बनाना में महमूद गुजनी और अरब का भी
 हाथ रहा है।

प्रसार—बाबा जवाकी ग्राम्म में हिन्दू राजपूतों के निहोने बाबा
 तान से प्रभावित होकर इस्लाम ग्रहण लिया था। इस समय उनका
 नाम अम्बुल्ला था। उनकी मृत्यु सन् ११६-२० मरी में हुई और पार
 दामन में ही उनकी कब्र स्थापित कर दी गई। ग्याहरा सतालीस सूची
 में तो सत्यद साकार मरूताओं मियाँ अधिक प्रसिद्ध हुए जिन्हें लाग
 अधिकतर बाल मियाँ कहा करते थे। उनकी कब्र उत्तर प्रदेश के बहा
 इष जिले में बनी हुई है। कहा जाता है कि उनका नाम महमूद गुजनी
 की महन था। इहाँ मुदाबस्था में ही अपने बाबा के साथ जो मुल्तान
 के भाग पर बग़ावत करने में सहयोग दना ग्राम्म कर लिया था। इनके
 अतिरिक्त के स्वतंत्र हमले भी इहाँ हिन्दुओं पर किए। अन्ततः
 १४ जून १०२३ इस्वी का लड़ते-लड़ते शहीद हुए। इनकी कब्र पर प्रति
 बार 'उम' मनाया जाता है। और यह 'उम' दश के अन्य मागों में भी
 मनाया जाता है और इनके अनुयायी 'हमारी कब्रों' कहता कर
 प्रसिद्ध है। पूर्व भाग में 'शाही मियाँ का धान' बनाने की प्रथा है।

इ.ह। व समकालीन अफ़ग़ानिस्तान निवासी अलीउल्ल ख़ुदायी भी हैं जो दादा गंज बख़्श कहला कर अधिक प्रसिद्ध हैं। इनकी कद रचनाओं में से 'कदमूल महबुब' अत्यधिक महत्व की है। इन्होंने जुनेय्द व मन का समयन किया है। इन्हें दिखावे परमन्द न था। वे बसबस पालन पर बल्ल बल्ल दत्त थे जिस कारण इन्होंने अविवाहित जीवन व्यतीत किया। इन्होंने किच स बैस्मियन सागर तथा सीरिया से मुर्किस्तान तक भ्रमण किया था, जहाँ वे सूफी महात्माओं से मिलकर इन्होंने विचार विनिमय भी किया था। इनकी मृत्यु सन् १०६३ ईसवी अथवा १०७१ ईसवी में लाहौर आकर हुई थी। पाँच सौ वर्ष के अनन्तर गंगाजा मुहम्मदीन शाय इन्हें दादा गंज बख़्श कहने की परमगु चक पड़ी। इनके बाद मय्यद अहमद मुल्तान सामी सरवर का नाम आता है। इन्हें सौत अधिकतर लाली दादा कहा करते हैं। उनके हिन्दू-मुस्लिम शिष्य मुल्तानी कहला कर प्रसिद्ध हैं।

मुल्तान के निकट शाहजाद म इनकी मृत्यु सन् ११५१ ईसवी में हुई थी। इनके शिष्यों की मज्मा जलघर तथा पञ्जाब में अधिक है। वे गात वक्रात हुए घूम घूमकर अरब मन का प्रचार करते हैं।

गंगाजा मुहम्मदीन ईरानी चिरत व सूफी मन ग्लाजा उरमान हार पानी के शिष्य थे। वे दिल्ली और मुल्तान से हाकर अजमेर आये थे और अन्त तक वहीं रहे। मुहम्मदीन रसियाग काही इनके शिष्य थे जो सिन्धी में रहा करते थे। रसा गमय व अन्य सूफी मन बहाउद्दीन जद रिया थे जो मुल्तान में बसे हुए थे। वे मुस्लिम मन शिष्यामुद्दीन मुहम्मदीन के शिष्या यानों में थे और इन्होंने कुताग दस्तगद और पदगजम का भ्रमण किया था। इन्होंने मुल्तान में ही गर्तियों की एक शाखा भी स्थापित करवायी। मुस्लिम इरानी फति ईगाजी इनके मुल्तान में मिक्क इनका शिष्य हो गया था। इनकी मृत्यु सन् १२६३ ईसवी में हुई थी। इनके बाद इनके शिष्य इल्म मद्दहीन और अबुल उताह दस्तगीन ने अन्तर्निह प्रचार का कार्य जारी रखा। इनके शिष्य मुहम्मदीन कहला

कर ग्याना मुन्नुमीन व मुगीद हुए। इहाँ की शिष्य गम्मा में मक
दूम लाल शहबाज़ कलंदर व जिन्होंने मिच में पाकर अरन मन का
प्रचार किया था और उम ग्रान्त व मगरपीर की भांति छात्र तक सम्मा
नित हैं। यहाँ व हिन्दुओं व मगरपीर गडा भतूहरि स अभिन्न समक
नात हैं। इनका एक हिन्दू नाम लाल नसरुत्र भी बनलाया जाता है।
इनके मक़बरे तीर्थ स्थान बन गए हैं। इसी क्षाल व एक अन्य प्रसिद्ध
सुड़ी मिच व सम्यद जमान बुम्बारी है।

गुजरात ग्रान्त भी सुड़ी सनो का फल रहा है। पाग्न, बाब,
गम्मान आदि इनमें स प्रमुख स्थान हैं। पाग्न व सम्यद मुहम्मद व
हमन सुप्रसिद्ध सुड़ी सत हा चुर हैं। इन स्थानों में इस्माइलिया और
कगमानिया जस बुद्ध सम्प्रदाय भी रह हैं जिनके विरुद्ध अलाउद्दीन
खल्जी का फतार व्यवहार करना पड़ा था। रजिना व शासन-काल में
य शिली तक व लिए विरुद्ध बन गए व जिन्हें बड़ी कठिनाई स दूर
किया जा सका। पानिमा शाखा का केन्द्र यमन म था ना चुनचार स्या
नाय निराशिरा का घम परिवर्तन कर व ग्रान्त मन का अनुयायी बना
गए व। किन्तु समय मुन्निगानगरी व अरन पर य दा मानों में विभक्त हो
गए जिनमें स एक न अरना फल अरन का बनाया। एसावपन व
एक मनुदाय न भागन व पश्चिमी किनार पर तथा उत्तर-पश्चिम भाग में
अरन का स्थान किया। उनमें एक प्रचारक इन्व सदरुद्दीन न जो
मल्ल जलालुद्दीन मुल्तास का समकालीन था एक समन्वयवाणी मन
बनाया जिसमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव विरुद्ध का समापन कर उन्हें न
अथवा नदी बनाया गया है अविशु इस्लाम व नबी स अभिन्न टहगया
गया है। इसका प्रभाव हिन्दुओं का निलान में बहुत सहायक
निर्देश हुआ है।

शान्तनिया मगरा व अनुयायी तथा प्रचारक उत्तर म लेकर
दक्षिण भागन तक म फल हुए हैं। रजिना व मुस्लिम सनो में विचन
पन्नी व मगरा महर बनी, मल्ल इब्राहीम शाहान बना वक़्दीन,

शत्रु मुन्तवन्तातुहीन, ज़ारी ज़रखण्ड और धन्वान्तान गेमुलान धिनका दूसरा नाम मुहम्मद अलू फ़ैनी या उल्लेखनीय है ।

धगाल में कृन्तुमुहीन बगिनवार काकी के शिष्य रोम जलालुद्दीन मन्नेज़ बड़े प्रभावशाली सिद्ध हुए । ममलूक सल्तनत के समय तक कर्न सूफी तानज़ाह स्थापित ॥ तुर्के ये दिनम आध्यात्मिक सम्प्रदाय बना हुआ था । कहा जाता है कि धगाल में सूफीमत का प्रचार करने वालों में उत्तर प्रदेश के बीनपुर पेट्र के ही अधिक अनुयायी थे ।

प्रमुख भारतीय सूफी सम्प्रदाय—मास्तवाय में दिन प्रमुख चार सम्प्रदायों में श्रवना प्रभाव ठहरा किश उनमें से चिरिनया तथा सुदूर बर्निया सम्प्रदाय इन्हीं चार शाखाओं में नब्बक काश्गिया सम्प्रदाय तनत्र भिया शाखा का । इसी प्रकार मन्तवन्तिया, यद्यपि कुर्ना या से विस्मृत तथा फिर भी इसका सम्प्रदाय अल्पतरु तर्क में जोना जाता है ।

चिरिनया सम्प्रदाय का सम्पादक रसाजा अबूदशाफ़ शाही चिरतो बनलाये जाते हैं या अन्वी की नयी पीढ़ी में थे । चिरिन तुरगमान में स्थित है जहाँ यह एशिया माइनर में होकर आया था । ये मिमशाद अन्वी निनयरी का शिष्य थे । इस सम्प्रदाय के चार प्रमुख गुरा निम्नलिखित हैं—(१) रसाजा अबू अइम (मृत्यु-काल ६६६ ईसवी) (२) रसाजा अबू मुहम्मद (मृत्यु-काल १०२० ईसवी) (३) रसाजा अबू सुदूर (मृत्यु-काल १६३ ईसवी) और रसाजा मन्तूर (मृत्यु-काल ११३ ईसवी) । रसाजा मुन्तुहीन चिरती इनकी चौथी पीढ़ी में थे । दिन कर्न आना न अबू इगाज़ का बन्धु चिरिनया सम्प्रदाय का सम्पादक माना है । इस सम्प्रदाय का साथ 'विन्ना' माना है जिसका अनुयायी हमारे अनुयायी बालाग दिन एक स्त्री के साथ आया ममति में आया की माना मान है । इन स्त्रियों का कम भोजन करने के आगे मान दिन इसका दल में शामिल होता है । इनकी एक श्रवण विगारा इनमें मीलों प्रेम में पायी जाती है ।

काश्गिया सम्प्रदाय का उद्भव धनशान मानिमा में कहा है ।

हमरु मर्यापक अब्दुल क़ादिर जिलानी कह जात हैं। उनका एक अन्य नाम हमनुल हुसनी भी है। ये धर्मदास चाकर अबू सय्यद मुबारक मुबारमी व शिष्य हुए थे। इन्हें कुछ लोगों ने मुबारमी व दत्ताय मुम्बतमी भी दत्तनाया है जो ग़लत है। इनके पुत्र हनदनी सम्प्रदाय व मुम्बिया थे जिनमें उन्होंने अब्दुल क़ादिर का भाषा था। इसका प्रारम्भ मध्यम में हुआ था जो मन् ११३४ इसवी में नये मयन में शिद्दा केन्द्र के रूप में परिवर्तित हो गया। यहाँ से इराक़ मर में प्रचार हुआ था। इनकी मृत्यु मन् ११६६ इसवी में हुई थी। जिनकी निधि का सतर कारी सम्भल है। इन्होंने नान्यानक उपाधियाँ मिली थीं जिनमें से वीर ए-पीर सर्वोत्तम थी। इनका उमर गवित्तय धानी माम व स्याहवा का मनाया जाता है जिस स्याहवा शरीफ़ कहने की पर पर है। इनका अनुपायी अरबी टोपियों में कभी-कभी गुलाब व फूल का उपयोग करते हैं।

मुहम्मदिया सम्प्रदाय की स्थापना तुनी ज़ानवाद से मानी जाती है जिसका मर्यापक दियाउद्दीन नबीर मुहम्मदी थे। ये 'अग़ाबुल मुरी दीन' व रचयिता कह जाते हैं। इनकी मृत्यु मन् ११६० इसवी में हुई थी। इनके प्रमुख शिष्यों में 'अल नज़मुदीन कुदर' का नाम लिया जाता है जो विद्वानों का अग्रज कुदरी ज़ानवाद का मर्यापक समझा जाता है। शिहाबुद्दीन मुहम्मदी एक अन्य शिष्य थे जो मन् ११४५ इसवी में पैदा हुए १२६५ में मरे थे। ये अपने प्रारम्भिक काल में शम्स अब्दुल क़ादिर जिलानी का साथ भी रहे हुए थे। इनकी रचना अग़ाबुल मुरी मुम्बतमी है। इनके शिष्य मध्यम नूद्दीन मुबारक गुननरी ज़िल्ला में सायाह अलमेश द्वारा शम्सुल इस्लाम मुहम्मद हुए थे। इसी प्रकार एक अन्य शिष्य यहाद्दीन ज़ाकिर मुल्तान में आये थे। इस सम्प्रदाय के एक अन्य शरीफ़त अमीर मुल्तान शम्सुद्दीन मुहम्मद दिन अली उल हुसनीउल मुबारगी भी थे जो १६६ इसवी में पैदा हुए थे। इन्होंने तैयूर व अलमेश काज में बीच बचाव का भी काम किया था।

नान्यानक सम्प्रदाय - मर्यापक सम्प्रदाय दत्ताय मुम्बतमी

(पन्थु काल १६८६ ईसवी) बनलाये जाते हैं। निनकी मूल्य ईरान में हुई थी। इस सम्प्रदाय व निम्नलिखित उत्तराधिकारी हैं जो भाग्यीय परंपरा से सम्बद्ध करते हैं—

(१) मुहम्मद, (२) अबू बकर (३) सयमानुष फरसी, (४) काबिम (५) जकर सादिक (६) बायज़ीद विल्लाभी, (७) अबुल हसन भाग्वानी (८) शेख अली फारमदी (९) ग्याजा अबू युसुफ हमदानी (१०) ग्याजा अब्दुल गालिक गुज़दवानी, (११) ग्याजा आगिब रेवगरी, (१२) ग्याजा महमूद अजीर वगनवी (१३) ग्याजा अज़ीज़ा शाय अली समनानी, (१४) ग्याजा मुहम्मद बाबा सम्बी, (१५) ग्याजा अमीर सय्यद कुलाल साग्वारी, (१६) ग्याजा यहाउदीन नकशब्द ।

यहाउदीन का पुराना सम्बंध तरीक़े ग्याजगं से रहा है, किन्तु जब से उसका प्रभाव बढ़ा यह तरीक़े नकशब्दिया कहला कर प्रसिद्ध हुआ। गुरी सम्प्रदायों से समय-समय पर हेर फेर भी हाता रहा है। शिष्य परंपरा का सूत्राव्य मुश्किल के जीवन काल में ही होना आवश्यक न था। दिवंगत सूत्रीधन व नाम पर भी शिष्य-परंपरा चल सकती थी। यहाँ पर भौतिक सम्बन्ध से कहा अधिक आध्यात्मिक सम्बन्ध को ही महत्त्व दिया जाता रहा है। यह समय-समय पर प्रगतिशील तत्वों को भाँवर माना रहा है अथवा किन्तु इसका मूलमूल कष्ट इन्जाम ही बना रहा है। इस दृष्टि से नकशब्दिया का स्थान गणोपरि है। ये लोग 'विशेष' भरी मानते हैं, शिष्टता नहीं। इन्हें एकादश जनों का पालन करना पड़ता है निनमें स आठ अब्दुल गालिक व दूरे हुए हैं और शाय भी न यहाउदीन व ।

उत्तर सम्प्रदाय-गुरीधन का प्रभाव कई शताब्दियों तक गुरी, अफ्रीका, ईरान भाग्यस्थिता और उत्तर भाग्य में अधिक रहा है। इस पार्श्व स्थान भी उसका एक बड़ा दान पुत्रा है। बाबा प्रमुख सम्प्रदायों व दूर गंगा हाँ गए हैं। विशिष्टा सम्प्रदाय व निजामी और शरिफ़ी भी भाग्य हैं। फिर निजामी व हिम्मतवा और हम्मतवाही भी उत्तर भाग्य हैं। इन्हीं

परिणति-मानहवा शताब्दी में यूरोपीय चेतना तथा विचारण का प्रभाव मुस्लिम देशों पर भी पड़ने लगा। इस प्रभाव का कारण इन देशों की मियात क्षीण अक्षीणत्व होना था। सत्रहवीं शताब्दी का अन्त होने का पूरा एशिया भीत हो चला। पश्चिमी गोलार्ध का प्रभाव-क्षेत्र विस्तार पाने लगा। उनकी नयी खाद्यों ने विकास का नया मार्ग-बोला दिया। यूरोपीय देशों की रूढ़ शक्ति, वर्तनीत और औद्योगिक क्षमता बढ़ोड़ मानि हुई। इसका प्रभाव सन्दीपित भी अशुभ न रह सका। जीवन और मरण का प्रति हाव्योण शूलन लग। पुराने मूल्यों का स्थान नये मूल्यों लाने लग। भारतवर्ष भी कुछ देर से हाँ सहो इसकी लपट में आ गया।

गुरीमन न अपनी प्रारम्भिक अवस्था में परिश्रम मन्तान तथा नान कता पर अधिक बल दिया था। मन्त्राचार का गुरियां व यहाँ ऊँचा स्थान था। व फार उददेशक मात्र न थे अपितु अपने आचार व प्रति भी निष्ठावान थे। उनका लक्ष्य सब का अनुयायी होना था। परन्तु पर्ययी काल में उनका सहचरी उहाँ निष्ठावा तथा श्राव्यों व श्राव्यों वक बन गये। नाना प्रकार की लक्ष्य की जान लगा। उन सिद्धान्तों की मनमानी व्याख्या कर की जान लगी। धीरे-धीरे कमराज का प्रसार होन लगा और आध्यात्मिक ज्ञान व स्थान पर श्रेष्ठ तथा श्राव्यों व कर कर लिया। उच्च मानक श्राव्यों व श्राव्यों में अनभिज्ञ तथा अशिक्षित वगैरे श्राव्यों का शिक्षण होन लगा। सभी प्रभाव व शीत और सुखदा व श्राव्यों का समाप्त कर दिया। गुरीम में मुख्यतः कमराजारा व भी इनकी वर श्राव्यों में काह कम उमर नहीं गयी।

पर्यायी मूर्तियों १ पुगुन जगो की हियायनो मया काग्यामा का मुला
कर कुगा आर ह्रीम की उपाय करनी आगम्य कर नी । इनम म दुष्ट
ता यगाय और उननरु की आर उनुम मय मय तत्रमत्र पार मय
मागीत क करकर म क म मय । गुण क मरमनिक आचार विचार
नि । १२ । म मरमनिक मया उष्ट मय हो मय ।

शाह पत्नीउस्ता व शब्दी म—“इन चरुपिया, उपदेशकों मिथ्या चारियों और खानडाह निवासियों से मैं कहता हूँ कि छ मयम तथा भक्ति व पापकी एव समयकों तुम सारहीन घाटियां में भटक रह हा और तुच्छ तथा शुक्र कार्यों का अपना गठ हो। तुमने मनसमुदाय को साक्षात्कार कार्यों की आर आमंत्रित किया है। तुमने सुधि पर जीवन का योग सकीण तथा सकुचन कर लिया है। यद्यपि तुमको प्रमाण के लिए नियुक्त किया गया था, न कि सकीणता के लिए। तुमने आसक्त प्रामया व कयनों की अरन्त जीवन का भ्रष्ट मार्ग निर्देशन मान लिया है। यद्यपि ये बातें प्रचार करने की नहा हैं, अपितु लपेट कर रख देने की हैं।

परन्तु जब तक जीवन में नागरता और सत्तचार तथा स्नह-सौहाद एव सहानुभूति-सहयोग जैसे मानवी गुणा का महत्त्व बना हुआ है तब तक सुश्रुत उसी आदर भाव से दया नायेगा जबकि महान आदर्श को लेकर वह प्रादुर्भूत हुआ था।

--नर्मदश्वर चतुर्गनी

विषय प्रवेश

इस पुस्तक के नाम से ही यह पर्याप्त रूप से स्पष्ट है कि इसे क्यों सत्य की खोज करने वाले व्यक्तियों या उनके समूहों के साहसिक कार्यों और परिश्रम का उदाहरण प्रस्तुत करने वाली माला में सम्मिलित किया गया है। इस्लाम के धार्मिक दर्शन सूक्ष्मतः को प्राचीनतम विज्ञान परिभाषा में 'आध्यात्मिक सत्यों को समझना' कहा गया है और मुसलमान रहस्यवादियों को स्वयं का 'अहलुल हक' (सत्यानुयायी) कहना बहुत प्रिय है। उनके मुख्य सिद्धांतों का इस दृष्टिकोण से वर्णन करने समय में निखी चीना तक उस साम्राज्य का उल्लास करूँगा, जिसे मैंने गत बीस वर्षों में इस्लामी रहस्यवाद के सामान्य इतिहास के लिये एकत्र किया है। यह निरर इतना विशाल और बहुमुखी है कि इसके साथ पूर्ण न्याय करने के लिये कई मापी प्रयोगों की आवश्यकता पड़ेगी। यहाँ पर मैं आध्यात्मिक जीवन के केवल कुछ सिद्धान्तों, तरीकों और विशिष्ट रूप रोगियों का, जिनका पालन ईसवी सन की आठवीं शताब्दी से वर्तमान समय तक आध्यात्मिक जीवन विज्ञान के प्रत्येक वर्ग और अंतरा के मुसलमानों ने किया है, स्थूल-वर्णन कर सकता हूँ। जिन मार्गों से होकर वे गुज़रे वे बहुत दुर्गम हैं वे दूरस्थ पथ-हीन शिखर अन्धकारमय और भ्रातुल बन देनेवाले हैं। किन्तु यदि हम उन यात्रियों का साथ उनकी यात्रा के अन्त तक निमाने की आशा न भी करें, तो भी उनका धार्मिक वातावरण और आध्यात्मिक इतिहास के बारे में जो कुछ सूचना हमने एकत्र की है, यह हमें उनके द्वारा लिखी विविध अनुभूतियों को समझने में अत्यन्त मदद देगी।

अतएव सर्वप्रथम मैं सूक्ष्मतः के आविर्भाव और ऐतिहासिक विचार, इसका इस्लाम से सम्बन्ध और इसकी सामान्य प्रकृति के बारे में थोड़ी-थी

पाठें पढ़ना चाहता हूँ । ये विषय धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन करने वाले विद्यार्थी के लिये तो रोचक हैं ही, स्वयं सूफ़ीमत का गम्भीर अध्ययन करने वालों के लिये भी इनका कुछ ज्ञान होना अत्यावश्यक है । यह कहना बिल्कुल सत्य है कि सभी रहस्यात्मक अनुभूतियाँ अन्त में एक ही बिन्दु में समाहित हो जाती हैं, किन्तु यह बिन्दु रहस्यादी के धर्म, शक्ति और स्वभाव के अनुसार विभिन्न रूप धारण कर लेता है जब कि उस एक बिन्दु तक पहुँचनेवाली रीत्याँ अनन्त प्रकार की होती हैं । यद्यपि सभी पक्षे प्रकार के रहस्यवादों में कुछ बातें सामान्य होती हैं, फिर भी प्रत्येक को उन मिलच्छेष विशेषताओं द्वारा पहचान लिया जाता है, जो उन परिस्थितियों के कारण उसमें आयी जिनमें उसका आधिर्भाव और विकास हुआ । जिस प्रकार इसाई रहस्यवाद को बिना इसाई धर्म के संदर्भ में नहीं समझा जा सकता, उसी प्रकार इस्लामी रहस्यवाद को भी समझने के लिये इस्लाम के बाह्य और आन्तरिक विकास पर ध्यान देना आवश्यक है ।

‘मिरिद्व’ (रहस्यादी) शब्द यूनानी धर्मशास्त्र में यूरोपीय साहित्य में आया है । इस्लाम की तीन प्रमुख शाखाओं अरबी, फारसी और तुर्की में इस ‘मिरि’ शब्द से स्पष्ट किया जाता है । ‘मिरि’ रूप से ये शब्द कर्णधार नहीं हैं क्योंकि ‘मिरि’ शब्द में एक विशेष धार्मिक सक्ति या अनुमान पाया जाता है और इसका व्यापार फलन का रहस्यादियों के लिये होता है जो इस्लाम धर्म में निश्चित रूप में है । यद्यपि धर्म की गति के साथ इस शब्द ‘मिरि’ ने यूनानी शब्द के उच्च अर्थ—परिधि छात्रों द्वारा मूल धार्मिक, प्रतिभाविता धर्म के उत्कर्ष में धर्म आर्ति—का ग्रहण कर लिया, तथापि जब इसका पहले ‘मिरि’ प्रचलन लगभग ८०० ई० में हुआ तो इसका अर्थ साधारण ही था । अभी तक इसका मूल अर्थ के शब्द में सम्मिलित है । अधिकांश मिरि शब्द शास्त्र की उपयोग करने हुये इसे अरबी वाक्य ‘मिरि’ से अनुक्रम मानते हैं, जिसका अर्थ ‘शुद्धता’ होता है । इस अनुसार ‘मिरि’ का अर्थ ‘पवित्र हृदय माना’ या ‘परायण

के प्रियजनो में एक' होगा। कुछ यूरोपीय विद्वानों ने इसका शास्त्र 'सोफिस्' से 'यियोसोफिस्' (ब्रह्मवादी) के अर्थ में स्थापित किया है। किन्तु तोएस्देके ने बीस वर्ष पूर्व लिखित एक लेख में यह निश्चित रूप से सिद्ध कर दिया है कि यह नाम 'सू' (ऊन) शब्द से प्रद्वेष किया गया था और प्रारम्भ में इसका प्रयोग उन मुसलमान तपस्वियों के लिये होता था जो ईसाई साधुओं के अनुकरण में पर्याप्त और सासारिक निःकारता के प्रति विरक्ति व विह्वल-स्वरूप मोटा ऊनी वस्त्र धारण करते थे।

प्राग्मिक काल के सूरी वास्तव में रहस्यवादी होने की अपेक्षा तापस और एकान्तवासी अधिक थे। पाप के प्रति अत्यधिक घेना और कृपामय तथा नरप्राप्ति की याचनाओं के मय ने उन्हें सांसारिक प्रलोभनों से दूर भगा कर मुक्ति की खोज करने की प्रेरणा दी। इन बातों को अच्छी तरह समझना हमारे लिये बहुत कठिन है। कुरान में इनका अत्यन्त विशुद्ध चित्रण किया गया है। दूसरी ओर कुरान से उन्हें यह भी चेतावनी मिलती थी कि मोक्ष प्राप्ति पूर्णरूप से अल्लाह की दुर्बोध इच्छा पर निर्भर है। वही मले आदमियों को सही रास्ता दिखाता है और दुष्टों को भटकता देता है। परमात्मा की दूरदर्शिता की अनन्त तन्त्र पर उनका भाव्य लिखा हुआ है और कोई भी उसे बदल नहीं सकता। केवल इतना ही निश्चित था कि यदि रोजा (भ्रम), नमाज और सत्कारों द्वारा मुक्ति मिलना उनका भाव्य में बड़ा है तो वे अवश्य मुक्त हो जायेंगे। ऐसे विरोध का स्वाभाविक अन्त एकान्तवास और परमात्मा की इच्छा पर अपने को पूर्ण रूप से छोड़ देने में होता है। भूमिगत व प्राग्मिक रूप की यही निश्चित चित्त-वृत्ति है। आठवीं शताब्दी में मुसलमानों का धार्मिक जीवन का मुख्य-भोजन मय था। परमाना, नरक, मृत्यु और पाप का मय हमेशा उनके मन में समाया रहता था। किन्तु इसकी विरोधी प्रेरक-शक्ति ने भी अरना प्रभाव दिखाना शुरू कर दिया था और कम-से-कम राबिया जैसी साध्वी स्त्री का रूप में सच्चे रहस्यवादी आनन्द-प्राप्त का प्रत्यक्ष और उन्मुख उदाहरण प्रस्तुत कर दिया था।

यही तक तो सूफी और सनातन पंथी कट्टर मुसलमान में कोई बड़ा अन्तर नहीं था, सिवाय इस कि सूफी लोग कुरान में वर्णित कुछ सिद्धान्तों को असाधारण महत्व देते थे और दूसरे सिद्धान्तों की जिन्हें बहुत से मुसलमान समान रूप से आवश्यक समझते थे, उपेक्षा करते हुए उनका विनाश करत थे। यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि तारख इस्लाम की क्रियाशील और गिलास प्रिय भाजना के बिल्कुल विपरीत था। एक प्रसिद्ध आपत में पैगम्बर ने भिक्षुओं के आत्म-समर्पण को बुरा बताया है और अपने अनुपायियों को पात्रियों के विरुद्ध विहाद (धर्म युद्ध) में लगे रहने का आदेश दिया है। जैसा कि सर्वसिद्धि है उन्होंने विवाह के पक्ष में ठोस प्रमाण दिए हैं। यद्यपि उनके द्वारा ब्रह्मचर्य की निन्दा प्रभावहीन नहीं सिद्ध हुई, फिर भी उनका उत्तराधिकारियों द्वारा प्रारम्भ, सीरिया और मिस्र की विजयों ने मुसलमानों को ऐसे विचारों के सम्पर्क में ला दिया जिन्होंने उनका जीवन तथा धर्म के प्रति दृष्टिकोण को बहुत कुछ परिवर्तित कर दिया। कुरान का अध्ययन करने वाले यूरोपीय विद्वान इसमें महार सनराशाओं को हल करत समय इसके रचयिता की अस्थिरता और अराजकता पाये बिना नहीं रहेंगे। मुहम्मद साहब की मृत्यु इन असंगत ध्वनियों का ज्ञान नहीं था और न वे उनके उन अपने अनुपायियों के नियमों और आग्रहों की वजह से, जिन्होंने अपनी मोली धरदा के कारण कुरान को 'अल्ताह के ध्वन' के रूप में स्वीकार कर लिया। किन्तु मतभेद तो था ही और शायद ही इसका फल सल्मान दूरगामी परिणाम सामने आ गया।

इन्हीं कारणों ने निम्नलिखित संप्रदायों का जन्म दिया—'मरवाही' जो धर्म में विद्वान्ता करत थे और परमात्मा के प्रति प्रेम और श्रद्धा के प्रति जोर देते थे 'अद्विती' का इस ध्यान का दावा करत थे और 'बाकिरी' का इस बात से इन्कार करने से कि मनुष्य अपने पापों के लिए स्वयं ही उत्तरदायी है 'मोतावली' जिन्होंने तक के आधार पर धर्मशास्त्र का

निमाण किया और जो प्रारम्भवाद को उसके न्याय के विरुद्ध मान कर अस्वीकार करते हैं और अन्त में आते हैं 'अशस्त्री' जो इस्लाम में परिश्रुतवाद के प्रवर्तक हैं और जिन्होंने उस आध्यात्मिक और आदेशात्मक पद्धति का निर्माण किया जो सनातनपंथी मुसलमानों के सम्प्रदाय में अब भी विद्यमान है। ये सारी विचार धारणें यूनानी धर्म और दर्शन से प्रभावित थीं और सूफीमत पर इनकी जबरदस्त प्रतिक्रिया हुई। हिजरी सत्र की तीसरी शताब्दी के प्रारम्भ में या नवीं शताब्दी इसनी में हम इसमें उठने वाले नये सन्नीर के स्रष्टा चिह्न पाते हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि सूफियों ने अपने शरीर को कष्ट देना और अपनी दृष्टि पर गौर करना छोड़ दिया, बल्कि यह है कि वे अब तपस्वर्या को एक लम्बे सत्र की पहली मजिल मानने लगे। वे इसे ऐसे बड़े आध्यात्मिक जीवन के लिये प्रारम्भिक प्रशिक्षण मानने लगे जिसकी करल तप करने वाला कहना भी नहीं कर सकता। मैं कुछ ऐसे वाक्यों को उद्धृत करूँ, जो उस काल के रहस्यवादियों से हम तक पहुँच रहे हैं, इस परिवर्तन का स्वरूप समझने का प्रयास करेंगे।

“प्रभु, मनुष्यों से नहीं सीखा जाता। यह परमात्मा का एक वरदान है और उसी की कृपा से प्राप्त होता है।”

“सिंघाव उसका, जिसका हृदय में उसे परलोक का चिन्ता में सदैव स्थिर रहने वाला प्रकार है, कोई भी इस संसार की निषेध-वासनाओं से मुक्त नहीं माँदता।”

“अज्ञानी की आध्यात्मिक आँख खुल जाती है, सब उसकी दृष्टि में अन्त बन्द हो जाती है। यह सिंघाव परमात्मा का कुछ भी नहीं देखा।”

“यदि शान हरय रूप धारण कर लेता उसे देखने वाले सभी लोग उसका सौन्दर्य, सामर्थ्य, मातुर्य और स्वभाव देख कर भर मरें और उसकी प्रभा के समस्त ग्रन्थेक धमक पीकी पड़ जाय।”

“शान बोलने की अपेक्षा मौन के अधिक समीर है।”

“जब हृदय इसलिये रोता है कि इसने खो दिया है, तब आत्मा इसलिये हँसती है कि इसने पा लिया है।”

“जिस प्रकार परमात्मा का दर्शन करने वाली किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं रह जाता जैसे ही परमात्मा का दर्शन करने वाली कोई वस्तु नाश भी नहीं होती। क्योंकि परमात्मा का जीवन नित्य है, इसलिये उसे देखने वाला भी उसका दाय नित्य बना दिया जाता है।”

“हे परमात्मा ! जब मैं पशुओं की पुकार, वृक्षों का वम्पन, पानी की कलकल ध्वनि, चिड़ियों की कूब, हवा की सरसरहट या बिजली की फड़क सुनता हूँ तो मुझे भासित होता है कि य तरी एकता के साक्ष्य हैं और इस बात का प्रमाण है कि तेरे समान कोई वस्तु नहीं है।”

“हे मेरे परमात्मा ! मैं तुम्हें सर्वसाधारण के बीच ऐसे घुलाता हूँ जैसे लोग रंगी का घुलाते हैं किन्तु एकान्त में मैं तुम्हें मायूक की तरह सुनानिष्ठ करता हूँ। सर्वसाधारण का अर्थ मैं कहता हूँ, ‘हे मेरे परमात्मा !’ किन्तु एकान्त में मैं कहता हूँ ‘हे मेरे मायूक !’”

प्रवास, शांति और प्रेम जैसे एनीमल के प्रधान स्वर हैं और आने वाले अन्त्यायी में मैं यह दिखाने का प्रयास करूँगा कि कैसे इनका विकास हुआ। अन्तर्लोकता का आधार यह विराट्मन्तादी विरमास है, बिचने इहनाम का ‘एक सर्वोपरि परमात्मा’ को परध्याना पर उसके स्थान पर ‘एक पान्थिक उता’ का स्थापना की, बिचका सिद्धासन ‘उत्पन्न-उत्पन्न अन्ताव (मर्गों का भी स्वर) की अपेक्षा मानव हृदय में अधिष्ठ है और का उपरि विन्मात और निपासीन रहता है। आग बन्ने से पहले एक एक प्ररन का उतर दे देना अधिष्ठ सुविधाजनक होगा, जो कि पाठकों का मन में आने आर उठेगा—आगिर मपी उनाम्दी के मुख्य मानो ने इस सिद्धान्त को कहाँ से ग्रहण किया।

आधुनिक शोध कार्यो से यह सिद्ध हो चुका है कि रश्मिमा के आनीर्मात का कोई एक ही निरिस्त कारण नहीं देना का संभवता। ऐसी

स बढ़ती हुई यह विचार धारा भी गलत साबित हो चुकी है कि सूफ़ीमत एक निश्चेता सेमिटिक धर्म के विरुद्ध आर्य-मस्तिष्क का प्रतिनिध्या है और सत्त्वत भारतीय या इरानी चिन्तन का फल है। इस प्रकार का कथन अत्यंत सय होने पर भी इस सिद्धान्त की अवहेलना कर देते हैं कि 'अ' और 'ब' में ऐतिहासिक सम्बन्ध स्थापित करने का लिये उनकी एक दूसरे से समानता का प्रमाण हो प्रस्तुत कर देना पण्यत नहीं है, बिना साध ही साथ यह दिखाने लिये कि (१) 'ब' का 'अ' से यथाय सम्बन्ध ऐसा था जिससे मानी हुई सृष्टि सम्भव हो सके। (२) जो अनुमान लगाया जाय वह सभी मुनिस्त्विता और उपयोगी तथ्यों पर ठीक उतर सके। बिन अनुमानों का उत्प्रेषण करने किया है वे इन शर्तों का पूरा नहीं करते। यदि यह मान भी लिया जाय कि सूफ़ीमत आर्य-भावना का विद्रोह का अतिरिक्त और कुछ नहीं था, तो इस असन्दिग्ध तथ्य की गारण्य कस की जायगी कि मुसलमानी रहस्यवाद का कुछ प्रमुख अमूल्य सारिया और निस्त के निवासी और अरब जाति के थे। इसी प्रकार इसकी उत्पत्ति बौद्ध धर्म या वेदान्त से मताने वाले यह भूल जाते हैं कि इस्लामी सम्प्रदाय पर भारतीय प्रभाव की मुख्य धारा बाद का समय की है, जबकि मुसलमानी धर्मशास्त्र, दर्शन और विज्ञान ने अपनी प्रथम प्रचुर बहों एसी भूमि पर जमायीं जो मूनानी सृष्टि से पूरा रूप से तर थी। सच बात तो यह है कि सूफ़ीमत एक निश्चित वस्तु है और इस कारण इस प्रश्न का, कि इसका आविर्भाव कब हुआ, कोई सीधा उत्तर नहीं दिया जा सकता। जब हम सूफ़ीमत का निमाण करने वाले विभिन्न आन्धालनों और शक्तियों का अन्तर समझ लेंगे और यह निश्चित कर लेंगे कि करने विकास की प्रारम्भिक अवस्था में इस किस दिशा में चलना चाहिये, तो इस प्रश्न का उत्तर हमें अपने द्वार मिल जायगा।

सर्व प्रथम हम सत्य महत्त्वपूर्ण बात, अर्थात् और इस्लामी प्रमाणों पर विचार करेंगे।

१—इसाई धर्म

यह स्पष्ट है कि तप और एकान्तवास की प्रवृत्तियाँ, जिनका उल्लेख में कर चुका है, इसाई सिद्धान्त के साथ मेल खाती हैं और उन्हें यहाँ से पोषण प्राप्त होता है। इसील व बहुत स मूल पाठ तथा इसा के सन्दिग्ध कथन प्राचीनतम सूत्रियों की जीवन कथाओं में उद्धृत हैं और बहुधा इसाई सम्पादी (सहिब) सिद्धक के रूप रखते सुसन्मान तपस्वियों की शिक्षा और उपदेश देते हुये दिखाए पड़ते हैं। हम देख चुके हैं कि क्ली यन्त्र (सूत्र) जिससे सूरी नाम की खुपसि हुई है इसाई धर्म से निष्पत्ता है। एोजने पर भीनप्रत, जप (जिन) और अन्य तापसी क्रियाओं का मूल स्रोत भी यही मिल जाता है। जहाँ तक परमात्मा से प्रेम का सम्बन्ध है, निम्नलिखित उद्धरण स्वयं अग्ने साक्षी हैं —

‘ईसा तीन आत्मियों के पास से गुजरे। उनके शरीर दुर्बल और चेहरे पीले थे। उन्होंने उनसे पूछा, ‘तुम्हारी यह दुर्दशा कैसे हुई?’ तीनों आत्मियों ने उत्तर दिया, ‘नरकालीन के मय से’। ईसा ने कहा, ‘तुम एक निर्मित यस्तु से मय रगते हो परमात्मा के लिये उचित ही है कि मय रगाने वालों की रक्षा करे।’ वे उन्हें छोड़कर आगे बढ़े और अन्य तीन आत्मियों के पास आये। उनके शरीर और भी अधिक दुर्बल और चेहरे और भी अधिक पीले थे। उन्होंने उनसे पूछा, ‘तुम्हारी यह दुर्दशा कैसे हुई?’ उन लोगों ने उत्तर दिया, ‘शर्म की अभिलाषा से।’ ईसा ने कहा, ‘तुम एक निर्मित यस्तु की वादना करते हो। परमात्मा के लिये उचित ही है कि वह तुम्हें तुम्हारी इच्छित यस्तु प्रदान करे।’ वे और आगे बढ़े और अन्य तीन आत्मियों के पास पहुँचे। वे लोग सबसे अधिक पीले और दुर्बल थे। यही तब कि उनके चेहरे प्रकाश में दर्पण की भाँति चमक रहे थे। ईसा ने पूछा, ‘तुम्हारी यह रक्षा कैसे हुई?’ उन्होंने उत्तर दिया, ‘हमारे परमात्मा के प्रति प्रेम के कारण।’

ईसा ने कहा, 'तुम्हीं उसका सवाधिक सन्निकट हो, तुम्हीं उसका सवाधिक सन्निकट हो' ।"

सीरिया (शाम देश) का रहस्यवादी अहमद इब्न अल-हवारी ने एक दफा एक इसाई साधु से पूछा, "तुम्हारे धर्मग्रन्थों में सबसे बड़ा आदेश कौन-सा है ?" साधु ने उत्तर दिया, "हमें इसका बड़ा आदेश और का नहीं मिलता 'तू अपने स्वार्थ से अपनी समस्त शक्ति भर प्रेम कर' ।"

किसी मुसलमान साधु ने एक दूसरे ईसाई साधु से पूछा था— "ननुग्रह कर अपनी मक्ति में सबसे अधिक बढ़ जाता है ?" उस उत्तर मिला था— "जब उसका हृदय पर प्रेम का आधिपत्य हो जाता है, क्योंकि उस समय उसमें मक्ति में लग रहने का विचार ही या स्वयं का कोई भाव नहीं रह जाता ।"

अने साधुओं, भिक्षुओं और नामिक सम्प्रदायों (जैसे नसाफी या सूफियत) के द्वारा इसाई धर्म का दाहरा प्रभाव पड़ा एक तरहका क्षेत्र में और दूसरे रहस्यवादी क्षेत्र में । प्रायः इसाई रहस्यवाद नूतनत्व का भाव भी था । इसने बहुत पहले ही प्लाटिनस की और नव अजलानूनी दर्शन की भाषा और उनके विचारों को ग्रहण कर लिया था ।

२—नव अजलानूनी दर्शन (Neo-Platonism)

इस्लामी दर्शनशास्त्र में अजलानूनी (प्लेटो) का नहीं, बल्कि अरस्तू (अरिस्टोटल) का महत्त्व महत्वपूर्ण है । प्लाटिनस (Plotinus) का नाम सदा, जिसे जाना-मशहूर 'अग्रगण्यतम अजलानूनी' (ग्रैंड या ग्रेन्ड अजलानूनी) कहा जाता था, बहुत कम मुसलमान परिचित हैं । किन्तु, चूंकि अरबों को अरस्तू का प्रयत्न परिचित उसका नव अजलानूनी भाष्यकारों द्वारा ही प्राप्त हुआ, इसलिये जिस पद्धति का रंग में वे रंगे वह पोरफ़ीरी (Porphyry) और प्रोक्लस (Proclus) की थी । इस प्रकार वेदा

वर्णित 'अरस्तू का धर्मशास्त्र' जिसका एक अरबी संस्करण नवीं शताब्दी में प्रकाशित हुआ, मयार्थ में नव अउलादनी दशन का ही ग्रन्थ था ।

इस विचारधारा का एक दूसरा कार्य भी निराप ध्यान देने योग्य है । मेरा तात्पर्य उन लोगों से है जिन्हें झूठमूठ आरियोपेगस निपाठी हायानिसियस, सण्टपाल व दीक्षित शिष्य, का पताया जाता है । यह छद्म आयोनिसियस जो शायद फोइ सीरियाइ भिन्नु रहा हो, अपना गुह्य निषी हायरोथियस को पताया है, जिसे प्रादिद्वयम न यादूर सरूजी (५५१ ५२१ ई०) के समकालीन प्रसिद्ध सीरियायी ब्रह्मज्ञानी स्टेजेन पार मुन्नैली के रूप में स्वीकार किया है । हायोनिसियस ने इस स्टेजेन के प्रेम-धर्मभी मननों के शुद्ध अंश उद्धृत किये हैं । एक पूर्ण कृति 'दि युव आउ हायरोथियस आन दि डिडेन मिस्टरीज आउ दि डिपिनिटी' की अनायी हस्तालिखित प्रति भी हमें प्राप्त हुई है । यह 'ब्रिटिश म्यूजियम' में सुरक्षित है । हायानिसियस व लोगों ने, जिनका अनुवाद जॉन एचार्प इरिगेना ने लैटिन भाषा में किया, पश्चिमी यूरोप में मध्यकालीन एराई खम्बराद की नींव डाल दी । उनका प्रभाव पूर्व में भी महत्वपूर्ण था । उनका अनुवाद ग्रीक व सीरियाइ भाषा में उनका प्रकाशित होने व सुरक्षित था ही हुआ । उनका विद्वान्ता का उही माता में भाषाया द्वारा बड़े जार शार व प्रचार हुआ । "यन् ८५० ई० व लगभग हायानिसियस टाइपिग (जबला नदी) व अन्तर्जातिक महासागर तक प्रविष्ट था ।"

साहित्यिक परम्परा व अतिरिक्त अर्थ धारणों भी थीं, जिनका द्वारा उत्पत्ति, प्रचलन प्राप्ति, शांति और आकाद व विद्वान्ता प्रकाशित हुये, किन्तु पाश्चात्य को आरम्भ करने व निव यह सम्बन्ध रूप से बढ़ा जा चुका है कि आयुनएदल यूनानी खम्बराकी विचारों से परिपूर्ण वा और व विचार पश्चिमी एशिया और गिय व मुख्यमान निपाठियों तक जा पहुँचा गया । जय भिया, अरबानी व पूर्व व अरबों से । जिन भाषा में इसके विचारों में प्रमुख भाग लिया उनमें जिस देश का निपाठी सम्बन्ध भी एक था । उन दार्शनिक और धर्मनियन्त्र या दूसरे शब्दों

में यूनानी विज्ञान का विद्यार्थी कहा गया है। जब आगे यह कहा जाता है कि उनकी चिन्ता हाबोनिस्मिपस के सैलों में पाद चाने धानी घातों में मल खाती है तो हम बिना भिन्न इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि नव अज्मातूनी दर्शन ने इस्लाम में उसी रहस्यवादी रूप का अर्क घाती परिमाण में जाला, जिससे इसाई धर्म पहले से ॥ यद्यत्तोर था। मैं इसकी ओर सक्षत कर चुका ॥ और सामान्य आधारों पर यही सत्य अधिक सम्भव भी है।

३—नाम्निक मत

यद्यपि कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिलता, फिर भी प्राग्मिक सूत्री चिन्तन में धर्म ज्ञान का सिद्धान्त जिस प्रमुख स्थान पर प्रतिष्ठित है वह इसका इसाई नाम्निक मत से सम्बन्ध होने की आशंका करता है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि मास्टर अल् करण का, जिसकी सूर्यमत् की परिमारा 'परमात्मा सत्त्वधी सत्य को समझता' मैंने इस प्रस्तावना का प्रथम टुट पर उद्धृत किया है, मता रिता 'सारी' या मैरानिपन ध्याय जात हैं। व पसय और बावित के मध्य बंसीनोनिया की दलदली भूमि में रहते थे। दूसरे मुसलमान सन्तों ने 'इस्म आज़ा' (परम नाम) का रहस्य खींचा था। इस इमाहीम इब्न आदम का एक व्यक्ति ने, जो उसे मरुभूमि में यात्रा करते समय मिला था, बताया था और जौही उसने इसका सन्धारण किया उस फैज़र निम्न का दर्शन हुआ। मार्वीन गुरिपेने 'नानी धर्म से 'सिद्दा' शब्द का ज्ञान लिया। इसका प्रयोग वे करने आध्यात्मिक गुरुओं (सिद्धों) के लिये करते थे और परमर्तों काय के एक बग का, जिसने 'मानी' का द्वैतवाद को स्वीकार कर लिया था, यह विचार था कि इरफमान् जगत की विभिन्नता प्रकट और के सम्मिलन से उत्पन्न होती है।

“मनुष्य के कर्म का आदर्श अधकार स्त्री कलक से मुक्त होना है और अधकार से प्रकाश की मुक्ति का अर्थ है प्रकाश के रूप में प्रकाश की आत्म चेतना ।”

सत्तर हजार पदों वाले सिद्धान्त का निम्नलिखित वर्णन, एक आधुनिक शिवाई दरवेश की व्याख्यानसार, नास्टिक मत के स्पष्ट लक्षणों से परिपूर्ण है । यह इतना रोचक है कि मैं इस उद्धृत करने का शोभन संवरण नहीं कर सकता—

“अल्लाह वो, जो वाहिद हकीकत (एक मात्र सत्य) है, सत्तर हजार पदों पदार्थ और इन्द्रिय से बने ससार से पृथक् करते हैं । प्रत्येक सृष्टि (आत्मा) जन्म से पूर्व इन सत्तर हजार पदों से होकर गुजरती है । इनके भीतर ५ आध पदों तो सजली (प्रकाश) ५ हैं और बाहरी आध छायी (अधकार) ५ हैं । अपने जन्म की श्रौ यात्रा करते समय प्रत्येक प्रकाश के पदों को पार करते समय आत्मा परमात्मा के एक-एक गुण छोड़ती जाती है और प्रत्येक अधकार ५ पदों को पार करने समय एक-एक सांसारिक गुण धारण करती जाती है । इसी कारण बच्चा सदा दुःख जन्म लेता है क्योंकि आत्मा अपना बिलगाव अल्लाह से, जो एक मात्र सत्य है, जानती है । जब बच्चा पिदा में चिल्ला उठता है तो पवन इस कारण कि आत्मा अपनी कोई वस्तु याद करती है अथवा पदों द्वारा गुजरने में निश्चिन्ता (निस्मृति) छा जाती है । इसी कारण कहा गया है कि ‘अल् इमान मुस्कयुल जना यन्निश्चयान’ अर्थात् मनुष्य निश्चिन्ता एवं भूलों पर सम्मिथण है । अब आत्मा अपनी देह में बन्दी हो जाती है और इन साठ पदों द्वारा अल्लाह से पृथक् कर दी जाती है ।”

“हिन्दु दरवेशों के भाग शहीमत का समग्र उद्देश्य है आत्मा को इस बर्लीन से मुक्ति दिलाना, सत्तर हजार पदों पर पूरा ज्ञान बनाना और इस देश में रहने हुए ही आत्मा को परमात्मा के साथ उसके आर्त्तमय एकत्व का पारस दिलाना । देह का मिटा देने की आसुरिकता

नहीं है। इसे शुद्ध करके आध्यात्मिक बनाने की आवश्यकता है। इस आत्मा का सहायक बनाना चाहिये साधक नहीं। यह एक धातु की भाँति है, जिसे अग्नि में तपाकर रूपान्तरित करना होता है। शेष (गुरु) साधक को यह बताता है कि इस रूपान्तरण प्रक्रिया का भेद वह जानता है। वह कहता है, “हम तुम्हें आध्यात्मिक आधेग की अग्नि में डाल देंगे और तुम शुद्ध और सपे हुये निकलोगे।”

४—बौद्ध धर्म

म्याख्या शताब्दी में भारत पर मुसलमानों की विजय के पूर्व बुद्ध भगवान की शिक्षाओं का पूर्वी भारत और द्रानोस्वेनिया में राजा प्रभाव था। प्राचीन बैकिट्ट्या के मुख्य नगर बलर में वह उन्नत बौद्ध विहार थे। यह नगर इसमें बसने वाले स्त्रियों की अधिक संख्या के कारण प्रसिद्ध है। प्रोफेसर गोल्लजिहर ने एक महत्वपूर्ण घटना की ओर ध्यान आकर्षित किया है। वह यह है कि सूरी साधन इब्राहिम इब्न आदम का मुस्लिम गाथा में बलर का राजकुमार बताया गया है। वह सिंहासन त्याग कर रमता योगी बन गया था। उसने रूप में विन्धुल बुद्ध की ही कथा दुहराई गई है। स्त्रियों ने माला का प्रयोग बौद्ध भिक्षुओं से ही सीखा। जहाँ तक आत्म निर्माण, योगिक ध्यान, बुद्धि और मन के एकीकरण का सम्बन्ध है, बिना विस्तार में गये, यह बात दावे के साथ कही जा सकती है कि सूरीमत बहुत कुछ बौद्ध धर्म का श्रेणी है। विन्धु बिन रूपों में दोनों धर्म समान हैं, वे ही उनका मौलिक अन्तर को भी प्रकट करते हैं। भावना में वे एक दूसरे से दो धर्मों के समान दूर हैं। बौद्ध अपने को नैतिक बनाता है किन्तु सूरी केवल परमात्मा के ज्ञान और प्रेम द्वारा नैतिक बनता है।

मेरा निवार है कि स्त्रियों की ‘जना’ अर्थात् ‘यतिमत अहं का निररग्वानी सत्ता में लय कर देने की चरुना का मूल खोन निश्चय ही भारतीय है। ‘जना’ का प्रथम महान् व्याख्याकार ईरानी रूस्सवादी

पापघ्नीद बुद्धामी था, जिसने इसे अपने शिष्यक अशू अली सिन्धी से पाया होगा। उसके कुछ कथन इस प्रकार हैं—

“संसार के प्राणी बदलती हुई दशाओं (अवस्थाओं) के दास होते हैं किन्तु शानी का बोर्ड ‘ठान’ नहीं होता क्योंकि उससे अवशेष और सत्व दूसरे के सत्व द्वारा नष्ट कर दिये जाते हैं और एक पद बिना दूसरे के पद बिना में लुप्त हो जाते हैं।”

‘तीस वर्ष तब परमात्मा की मेरा दर्शन था जब मैं स्वयं अपना दर्शन हूँ।’ अर्थात् उसकी बीजनी के संसार का व्याख्यानुसार, “जो कुछ मैं पहल था, अब नहीं हूँ क्योंकि मैं और ‘परमात्मा’ की मानना स्वयं परमात्मा के एवम् को चरित करने है। चूंकि अब मैं नहीं रह गया हूँ, परमात्मा स्वयं अपना दर्शन है।”

“मैं परमात्मा से परमात्मा में गया, यहाँ तक कि मेरे भीतर से चिल्ला उठ, ‘तू ही मैं है’।”

मानना पड़ेगा कि यह बौद्ध धर्म नहीं, धर्म पदान्त का विरामक वाद है। हम ‘जना’ को पूर्ण रूप से निर्वाण के सत्य नहीं मान सकते। इनके शब्दों का अर्थ व्यक्तिगत सत्ता का लय होना है। किन्तु जहाँ निर्वाण शुद्ध रूप से मयारात्मक है, ‘जना’ के साथ ‘मत्ता’ (परमात्मा में अनन्त बीज) लुप्त हुई है। दरी धीन्द्रय के आह्लादपूर्ण विान में अपने को भूले हुये गुरु की प्रसन्नता ‘अष्टव’ की मागहीन बौद्धिक निर्मलता और शान्ति के विस्तृत विरपीत है। मैं इन विरपीत बातों पर इसलिये जोर देता हूँ कि मेरे विचार से इस्लामी विचार पाठ पर बौद्ध धर्म का प्रभाव बहुत बड़ा-बड़ा कर बना जाता है। जो बुद्ध विचार रूप से बौद्ध धर्म से सम्बन्ध रखता है उसकी अपेक्षा भारतीय बौद्ध धर्म का अर्थिक भेद दिया जाता है। गुरुओं की ‘जना’ की चलायना भी इसका एक उदाहरण है। उपासक मुगलमान बुद्ध के अनुयायियों का भूमिगत मान कर उनसे पूर्ण बना के और यह संभव नहीं था कि वे त्याग पात्रता करत। दूसरी ओर मुगलमानों की विचार के लक्षण एक हजार वर्ष पहले

स बौद्ध धर्म का प्रभाव बैनिङ्गया और पूर्वी इरान में था। अतएव इन क्षेत्रों में सूफीमत के विकास का इन्होंने अग्रस्थ ही प्रभावित किया होगा।

यद्यपि 'ऊना' अपने विश्वात्मनादी रूप में निर्वाण से मौलिक भिन्नता रखती है, ये शब्द दूसरे दृष्टांतों में इतने समानाधिक हैं कि हम उनको विस्तृत असम्बद्ध नहीं मान सकते। 'ऊना' का एक नैतिक पहलू होता है, जिसमें सभी भावों और इच्छाओं को मिटा देना पड़ता है। दुःखों और उनके द्वारा उत्पन्न दुःखों को मिटाना तदनुरूप सद्गुणों और सत्कार्यों में सतत् सगे रहने से ही सम्भव बताया जाता है। प्रोफेसर रिचर्ड डेविड्स द्वारा दी गई निर्वाण की परिभाषा से उसकी तुलना कीजिये—

“मन और हृदय की उस पारपूर्ण, ग्रहणशील अवस्था का अन्त, जो दूसरी ओर महान् कर्मयोग के अनुसार ‘यक्ति’ के नय-नये जीवन का कारण है। यह अन्त मन और हृदय की विरहीत दशाओं का विकास करने से सम्भव है और उन्हीं का साथ चलता है। यह तब पूरा होता है जब विरहीत अवस्था प्राप्त हो जाती है।”

धर्म के सिद्धान्त को, जो सूफीमत के लिये विदेशी है, छोड़कर 'ऊना' और निर्वाण की ये परिभाषायें लगभग अंतररूप एक दूसरे से मिलती घुलती हैं। और अधिक तुलना करना धर्म की बात होगी, किन्तु मरा विचार है कि हम यह निर्णय निकाल सकते हैं कि सूफियों का 'ऊना' का सिद्धान्त किसी हद तक बौद्ध धर्म तथा भारतीय ईश्वरी विश्वात्मनाद से प्रभावित हुआ था।

प्रत्येक निपट अन्वेषक ने विदेशी विचारों का ग्रहण करने की इस्लाम की चुनता को स्वीकार किया है और सूफीमत का इतिहास इस पानान्य नियम का पालन एक उदाहरण है। किन्तु इस तथ्य के पीछे हमें इस सम्पूर्ण प्रश्न का उत्तर नहीं देना चाहिये, जिसकी विवेचना में पड़ रहा है और न उन विदेशी तत्वों का ही सूफीमत मान लेना चाहिये, बिना इसने अपने विकास के क्रम में ग्रहण किया और पचाया है। यदि

इस्लाम को किसी समत्वपरपूर्ण दम से विदेशी धर्मों और दर्शनों के सम्पर्क में आने से रोक भी दिया जाता तो किसी न किसी प्रकार का रहस्यवाद उसके भीतर से ही प्रकट होता, क्योंकि बीज तो वहाँ पहले ही से मौजूद थे। निश्चय ही हम इस दिशा में कार्य करने वाली मीतरपी शक्तियों को अलग नहीं रख सकते, क्योंकि वे आध्यात्मिक आदर्शों के नियम के अधीन थीं। ऊपर बताये गये और इस्लामी धर्मों की शक्तिशाली विचार धाराओं ने, जो इस्लामी जगत से होकर निकलीं, इस्लाम के भीतर की उन प्रवृत्तियों को उत्तेजना दी, जिन्होंने सूरीमत की विधेयात्मक या निधेयात्मक दम से प्रभावित किया। जैसा कि हमने देखा है, सूरीमत का प्राचीनतम रूप विलास प्रियता और साधारणता के बिच्छ एक साथ निद्राह है। बाद में छाये हुये विवेकवाद और सन्देहवाद ने विरोधी आन्दोलनों को जन्म दिया, जिनका आधार आन्तरिक सहज शान और समान्य भ्रष्टा थी। एक सनातन-पंथी प्रतिक्रिया भी उत्पन्न हुई, जिसने अपने समय में बहुत से सच्चे मुसलमानों को रहस्यवादियों की भेखी में ला पका किया।

यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि मुहम्मद साहब के सादे और कठोर एकेश्वरवाद पर आधारित धर्म कैसे इन नवीन सिद्धान्तों को सहन कर सका। उनसे समझौता करना तो दूर की बात है। अल्लाह के सर्वभूषण स्वयं का एक अन्तरंग हृदयक से, जो समस्त विश्व का जीवन और आत्मा है, समन्वय स्थापित करना असम्भव प्रतीत होता है। फिर भी इस्लाम ने सूरीमत को स्वीकार किया है। धर्म-बहिष्कृत किये जाने के बजाय सूत्रियों को इस्लाम धर्म की सरणियों में सुरक्षित स्थान प्राप्त है और 'मुसलमानों की बातों की कथा' में पूर्वी विश्वासवाद के बड़े-बड़े कारनामे पण्डित हैं।

हमें एक घण के लिये कुरान की ओर लौटना चाहिये। वह एक ऐसी दृढ़ बशीरी है, जिस पर कस कर प्रत्येक मुसलमान सिद्धान्त और नियम को सिद्ध करना अत्यन्त आवश्यक है। क्या रहस्यवाद के बौद्ध

अबुर वहाँ पाये जाते हैं ! जैसा कि मैंने कहा है कुरान का प्रारम्भ इस धारणा के साथ होता है कि अल्लाह 'एक, अनन्त (नित्य) और सशक्तिमान्' है यह मनुष्यों की मायनाओं और आकाक्षाओं से बहुत ऊपर है यह अपने दासों का स्वामी है, न कि अपने बन्धुओं का पिता यह ऐसा न्यायाधीश है जो पापियों को कठोर दण्ड देता ॥ और अपनी इना केमल उन लोगों पर करता है जो निरन्तर भक्ति के काम एवं परचत्तार करते हुये और यिनमत्ता दिखाते हुये उसके खोष से बचते रहते हैं । यह प्रेम से अधिक मय का देवता है । मुहम्मद साहब की शिक्षाओं का यह एक पहलू है और निश्चय ही सबसे महत्वपूर्ण पहलू है । किन्तु जहाँ उन्होंने सत्कार और अल्लाह के बीच में एक अपार खाड़ी बना दी, वहीं उनका आन्तरिक सहज ज्ञान आत्मा के समक्ष अल्लाह के प्रत्यक्ष प्रगटीकरण के लिये लालायित है । अनुभूति के तर्ज शास्त्र में कोई निपटतायें नहीं हैं । मुहम्मद साहब, जिनमें रहस्यवादी होने का कुछ न कुछ अंश विद्यमान था, अल्लाह को दूर और निकट, सबसे ऊपर और अन्तरस्थ, दाना अनुभव करते थे । बाद के रूप में अल्लाह पृथिवी और स्वर्ग का प्रकाश है यह ऐसी सत्ता है जो संसार में और मानव आत्मा में कार्यरत है ।

“यदि मेरे बन्धे तुमसे मेरे घारे में पूर्ण ता उनसे कहो कि मैं निकट ही हूँ ।” (कुरान १०८२) । “हम (अल्लाह) उठारी गर्दन की नस से भी अधिक उठके समीप हैं” (कुरान ५, १५) । “और पृथ्वी में सच्चे ईमान वालों के लिये सबके मौजूद हैं और स्वयं तुममें भी । क्या हम नहीं देखते हा ?” (कुरान ५१, २०-२१) ।

१—“य देना सधालाना एनादी अमो फन्मो क्रोय ।”

—कुरान २, १८०

२—“नहूनो अक्रयो इल्लह मिन हवलिल् परीद ।”

—कुरान ५०, १५

३—“य मिल् आयातुब मिल् मुत्तिनीन ध प्रा अनरुमिनुम् अरला तुयसीरुन ?”

—कुरान ५१, २०-२१

उनके देर सफने में बहुत समय लग गया। मुसलमानों की चेतना ने, जो ध्यान गले कह (परमात्मा के तोत्र प्रोथ) के मयंकर काल्पनिक दृश्य से ग्रस्त थी, बहुत धीरे धीरे और बहुत कष्ट के साथ इन मुक्ति दायक विचारों का अर्थ समझा।

जिन आयातों को मैंने उद्धृत किया है, वे पक्षध ही नहीं हैं। समग्र रूप से कुरान ख़ुस्यवाद के लिये चाहे जितनी ही अनुपयुक्त हो, मैं इस विचार से सहमत नहीं हो सकता कि इसमें इस्लाम की ख़ुस्यवादी व्याख्या के लिये कोई आधार नहीं मिलता। यज्ञियों ने इसकी विरुद्ध व्याख्या की उन्होंने कुरान का वैसे ही अर्थ लगाया जैसे ज़िन्ना ने पेयदादूरा का। किन्तु वे धार्मिक मुसलमानों की बहुसंख्या को अपनी ओर मिलाने में इतने पूरुष्य से सफल न होते यदि सनातन पंथ के वत्ताही अभियन्ताओं ने एक ऐसी विद्या सम्बन्धी दर्शन-मदति की रचना न प्रारम्भ कर दी हानी, जिसने दैवी प्रकृति को शुद्ध रूप से एक औपचारिक अपरिवर्तनीय और पूर्ण इकाई, सभी प्रेमा और आवेगों से रहित एक सत्त्व मात्र, तथा एक महान् और अगण्य शक्ति में, जिससे कोई मानव प्राणी कोई सम्पर्क नहीं रख सकता या वार्तानाप नहीं कर सकता, परिवर्तित कर दिया। यही मुसलमानी धर्मशास्त्र का परमात्मा है। सूरीमत का यही निबल्य था। जैसा कि इस विषय पर हमारे अधिकांश विद्वान् प्रायसर डी बी० मैक्दानल् ने कहा है, 'सभी चिन्तनशील धार्मिक मुसलमान ख़ुस्यवादी होते हैं और सभी निश्वाग्यवादी भी होते हैं किन्तु कुछ ऐसे हैं जो इसे नहीं जानते।'

अपग अलग मूर्तियों का इस्लाम से सम्बन्ध 'यूनानिक पूरुष धनु' रूपा से लेकर फेरल नाममात्र का अज्ञात और उसका पैगम्बर में निश्वास प्रकट करने तक भिन्न भिन्न रूपों में होता है। अब कि 'कुरान और 'हदीस' सामान्यतः धार्मिक सत्य के अपरिवर्तनीय मादर' माने इस मानने में किसी बाहरी सत्ता की मान्यता नहीं सम्मिलित है निश्चय कर सब कि क्या सनातन-पंथी है और क्या 'मुन'

है। सृष्टियों का विचार स धर्मों और प्रश्नोत्तरों का बाँट महत्व नहीं है। यह इनसे सम्बन्ध ही क्यों रखने जबकि यह सीधे परमात्मा से प्राप्त सिद्धान्त का अधिकारी है? जैसा ही यह ज्ञान का पाठ मनोयोग, ध्यान और तल्लीनता के साथ करता है, उस पवित्र वचन के गुण अथ, जो अनन्त और अधम होते हैं, उससे अन्त चतु के समस्त चमत्कार उत्पन्न हैं। इस सृष्टिगण 'इस्लामान' या एक प्रकार का सहज ज्ञान द्वारा अनुमान कहते हैं। यह, परमात्मा द्वारा शुद्ध पवित्र और परमानन्द के चिन्तन से परिपूर्ण हृदयों में, परमात्मा द्वारा प्रकट किया गया ज्ञान का रहस्यमय अन्तर्ग्रहण और उस ज्ञान का, 'गारिफा' करने वाली बाण्डा से, बहिर्ग्रहण है। 'इस्लामान' द्वारा प्रमाणित सिद्धान्त स्वभावतः इस्लामा धर्मशास्त्र या एक दूसरे से पूर्ण रूप से मेल नहीं खाते, किन्तु इस मतभेद की गारिफा आसानी से हो जाती है। शब्दों की 'गारिफा' करने वाले धर्म शास्त्रियों से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे उन्हीं नियमों पर पहुँचेंगे जिन पर आना की 'गारिफा' करने वाले रहस्यवादी पहुँचते हैं और यदि दोनों पक्षों का आग्रह में मतभेद है तो यह नियम का पूर्ण व्यवस्था ही है, क्योंकि धर्मशास्त्र सम्पूर्ण निराद धर्म की प्रुष्टिया का दूर करता है और रहस्यवादी सत्य की विभिन्नता रहस्यवाद की अनुभूतियों की अनन्य रीतियों और स्तरों से मेल पाती है।

ज्ञान वाला अन्तर्ग्रहण में मैं सृष्टियों की निष्कामक धर्म के प्रति प्रवृत्ति का अधिक निम्नार से ध्यान करेंगा। यह कहना कि उनमें से अनेक बहुत अच्छे मुसलमान थे, अनन्य मुसलमान से मुसलमान थे और एक तीसरी संस्था, जो सम्भवतः सबसे बड़ी थी, ऐसा लगा कि थी जो 'मल' गिमान की मुसलमान थे, 'मल' नियम का एक माया भाग निरस्त देना है। प्रारम्भिक मध्ययुग में इस्लाम एक प्रगतिशील संगठन था और धीरे धीरे यह विभिन्न आन्दोलनों के प्रकार के अन्तर्गत, जिनमें सुन्नित भी एक था, समाविष्ट हो गया। अन्ततः पश्ची इस्लाम का वर्तमान रूप बहुत कुछ प्रगतिशील की देन है और प्रगतिशील एक स्तर था। उसने धर्म

और उदाहरण से इस्लाम की सूफीमतानुसार व्याख्या ने विवेक और परम्परा के विरोधी वादों में बहुत कुछ सामञ्जस्य स्थापित किया। किन्तु ठीक इसी कारण वह उस विद्यार्थी के लिये, जो यह जानना चाहता है कि सूफीमत तत्काल क्या है शुद्ध प्रकार के रहस्यवाद की अपेक्षा कम महत्वपूर्ण है।

यद्यपि इस विषय पर प्रातः अरबी और फारसी के ग्रंथों में दी गई सूफीमत की अनन्य परिभाषायें ऐतिहासिक दृष्टि से रोचक हैं, फिर भी उनका मुख्य महत्त्व यह यताने में है कि सूफीमत की परिभाषा नहीं हो सकती। जलालुद्दीन रूमी ने अपनी 'मसनवी' में एक हाथी के बारे में एक कहानी यही है जिसे कुछ हिन्दू एक झंझरे कमरे में प्रदर्शित कर रहे थे। उसे देखने को बहुत से लोग जुटे किन्तु जगह के अल्पवि अधिकारमय होने के कारण वे उसे देख नहीं सकते थे। अतएव उन्हें उसे अपने हाथों से टटोल पर यह जानना चाहा कि वह किस प्रकार का था। एक ने उसकी सूँढ़ टटोली और कहा कि वह जानवर पानी के नल के समान था, एक दूसरे ने उसके पान टटोले और कहा कि वह अश्व ही एक बड़ा पला था। तीसरे ने उसके पैर टटोले और कहा कि वह अश्व ही एक लम्बा था और चौथे ने उसकी पीठ टटोली और घोपणा की कि वह जानवर एक बड़े सिंहासन के समान था। सूफीमत की परिभाषा करने वालों की भी यही दशा होती है। वे वही अभिव्यक्त करने की चेष्टा कर सकते हैं, जो उन्होंने स्वयं अनुभव किया है और बाद भी ऐसा करना ही सत्य नहीं है जिसमें प्रत्येक प्रकार की व्यक्तिगत और निकटतम धार्मिक अनुभूतियों का समावेश हो सके। चूंकि वे परिभाषायें सूफीमत की कुछ निश्चितताओं और उसके कुछ पहलुओं पर मुगम और संक्षिप्त प्रकाश डालती हैं, कुछ उदाहरण दिए जा सकते हैं। 'सूफीमत यह है कि सूफी द्वारा ऐसे कार्यों का प्रतिपादन हो, जो केवल परमात्मा को ही ज्ञात हो और वह सदैव परमात्मा के संग में उस जग से रहता हो, जो केवल परमात्मा का ही ज्ञात हो।'

“सूत्रीमत पूरा रूप से आमानुशसन है।”

‘न किसी वस्तु का अधिकारी होना और न किसी वस्तु का अधिकार में होना ही सूत्रीमत है।”

“सूत्रीमत निमनो और शास्त्रों से घनी हुई काँड़ प्रणाली नहीं है बल्कि एक नैतिक अवस्था है। अर्थात् यदि यह एक नियम होता तो शिक्षा द्वारा ग्रहण किया जा सकता। किन्तु इसका विपरीत यह एक अवस्था (स्वभाव) है, इस कारण कि अनुसार कि ‘अपने का परमात्मा की नैतिक प्रकृति का अनुसार चनाओ’ और परमात्मा की नैतिक प्रकृति नियमों द्वारा या शास्त्रों द्वारा नहीं प्राप्त की जा सकती।”

“स्वतन्त्रता और उदारता तथा आत्म निग्रह का अभाव ही सूत्रमत है।”

“सूत्रीमत यह है कि परमात्मा तरे द्वारा तरे अह का मरणा कर तुम्हें अपने में घात कराये।”

“इष्टमान् जगत् की अपूर्णता को देखना और जो सभी अपूर्णता उस परे है उस परमात्मा का चिंतन में प्रत्येक अपूर्ण वस्तु का आत्म मूँद लेना ही सूत्रीमत है।”

“मानसिक शक्तियों को नियन्त्रण में रखना और इशकों पर ध्यान देना (प्राणायाम) ही सूत्रीमत है।”

“जो कुछ तरे भस्तिष्क में है उस निपाल डालना, जो कुछ तरे हाथ में है उसे दे देना और जो कुछ भी तुम्ह पर घटित हो उससे पीछे न हटना ही सूत्रमत है।”

पाठक देखेंगे कि सूत्रमत कई विभिन्न अर्थों का मिलाने वाला एक शब्द है और इसकी मुख्य रूप रणार्था का चित्रण करने में व्यक्ति का एक प्रकार का सम्पूर्ण चित्र ही बनाना पड़ता है, जो किसी एक ही पदवि का प्रतिनिधित्व नहीं करता। सूत्रियों का काँड़ यग नहीं है। उनकी कोई नियमबद्ध प्रमाणिक प्रणाली नहीं है। उनका ‘तरीक़े’ या पथ, विनय द्वारा ही परमात्मा को प्राप्त है, सत्ता में उतने ही है

जितनी मनुष्यों की आत्मायें । उनमें अनन्त वैयर्थ्य है, यद्यपि उन सब में एक पारिवारिक समानता दूँदी जा सकती है । ऐसे बहुसूत्री दृश्य के चर्चन निश्चय ही एक दूसरे से अत्यधिक भिन्न होंगे और प्रत्येक दशा में उत्पन्न प्रभाव बहुमुती सम्पूर्ण के इस या उस पहलू को दिये गये महत्त्व तथा पन्थों के चुनाव पर निर्भर होगा । सूफीमत के सार-तत्त्व का सर्वोत्तम प्रदर्शन इसका सर्वोत्कृष्ट प्रकार में होता है, जो तापसी और भक्तिमय होने की अपेक्षा निश्वात्मयादी और चिन्तनशील अधिक है । अतएव इस प्रकार को मने विराप उद्देश्य से अग्रभूमि में रक्ता है । क्षत्र को सीमित करने का लाभ काफी स्पष्ट है किन्तु इसका अनुपात भी बुद्धि कम और सीमित हो जायगा । मुसलमानी रहस्यवाद के बारे में समुचित मत स्थिर करने के लिये अगले अध्याय के साथ एक ऐसा उपयुक्त चित्र होना चाहिये जो विशेष रूप से उन आधुनिक प्रकारों से लिया गया हो जिन्हें मने स्थानाभाव के कारण अनुचित ढंग से छोड़ दिया है ।

प्रथम अध्याय

पथ

प्रत्येक जाति एव धर्म का रहस्यवादिया ने आध्यात्मिक जीवन की प्रगति का बखान यात्रा अथवा तीयाटन का रूप में किया है। इसी उद्देश्य के लिए अन्य प्रतीकों का भी प्रयोग किया गया है किन्तु यह प्रतीक अपने क्षेत्र में लगभग निश्चयापी सा प्रतीत होता है। इसका का यात्रा में निकलने वाला सूफी अपने को 'सालिर' (यात्रा अथवा साधक) कहता है। वह एक 'तरीकत' (पथ) पर धीरे धीरे उठते सागराना (मकामात) से होता हुआ अपने सत्य एक अथवा ब्रह्म में लीन होने तक (अना-किल्-हक) आगे बढ़ता है। यदि वह अपने आन्तरिक उत्थान का नक़्शा बनाने का प्रयत्न करे तो इस नक़्शा पर पूर्ववर्ती अन्यत्रका नक़्शों में पूर्ण साम्य नहीं मिलेगा। प्रारम्भिक काल में सूफ़ी गुरुआ ने पूर्णत्व का एस नक़्शे या मार्गदर्शक भनपूर्वक बनाए किन्तु नियमबद्ध करने की दुमाग्रपूर्ण मुस्लिम परिपाटी ने उसमें पीछे से बहुत कुछ जोड़ दिया। पथ का निरूपित बखान 'किताब अल-सुमा' का लेखक ने अपनी पुस्तक में किया है, जोकि सम्भवतः हमारे पास सूफ़ीनन पर सबसे प्राचीन एवं साराङ्गपूर्ण ग्रन्थ है। इसका अनुसार पथ में अधोलिखित सात विभागरूपल हात हैं और इस क्रम में (प्रथम का छोड़कर) प्रत्येक अपने पूरगानी सागरान का परिणाम होता है। (१) परचाजान, (२) संयन, (३) रिचग, (४) दैन्य, (५) पैर (६) सुदा म बिश्वाग और (७) सन्नाय—ये सोमन सूफ़ी के यौगिक एवं नैतिक अनुशासन का अंग हैं और हाफा भद 'दशाओ' (ग्रहगाल, हाल शब्द का बहुवचन) से दिनप्री मनोवैज्ञानिक श्रृंखला भी इसी प्रकार की है, बहुत सावधानी

सं समझ लेना चाहिए। जिस लेखक का उल्लेख मैंने ऊपर किया है उसने दस दशाएँ गिनाई हैं। वे हैं—ध्यान, ध्रुवा से सामीप्य, प्रेम, भय, आशा, श्रोतुस्वय, मैत्री, शान्ति, चिन्तन एवं निश्चयात्मकता। जबकि सोपानों की प्राप्ति एवं उनका पूर्ण ज्ञान स्वयं अपने ही प्रयत्न से सम्भव है, दशाएँ आध्यात्मिक माधनार्थ एवं प्रकृतियाँ हैं, जिन पर मनुष्य का कोई नियन्त्रण नहीं है।

“य परमात्मा से मनुष्य के हृदय में अनन्तरित होती हैं और वह न तो उन्हें जाने सं राफ सकता है और न जाने से ही।”

सूरी का पथ उस समय तक समाप्त नहीं होता, जब तक कि वह सभी सोपानों (महामात) को पार न कर ले और उनमें से प्रत्येक में आगे बढ़ने से पूर्व अपने का निपुण न बना ले तथा वह अनुभव न कर ले कि ध्रुवा (परमात्मा) ने उसे कौन कौनसी दशाएँ प्रदान करने की कृपा की है। क्योंकि तभी वह चेतना के उस उच्च स्तर पर स्थायी रूप से उठता है, जिसको सूरी लोग ‘माश्रुत’ (ब्रह्मज्ञान) तथा ‘वृद्धीकृत’ (सत्य) कहते हैं। इस स्तर पर ‘तान्त्रिक’ (अन्येषक अध्यासा साधक) ‘आरिफ’ शानी) हो जाता है और उसे बोध हो जाता है कि ज्ञान, ज्ञाता और ज्ञेय एक ही हैं।

सूरी के अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लगे के बाहरी दाँचे का पथा सम्मन संहित एवं स्थूल ध्यान करके अब मैं उसकी आन्तरिक प्रक्रियाओं का भी कुछ विवरण देने का प्रयास करूँगा। प्रस्तुत अध्याय में त्रिगुण याथा (पथ ब्रह्मज्ञान तथा सत्य) जिनके द्वारा सत्यान्येषण का प्रतीकात्मक वर्णन किया जाता है, के प्रथम भाग का वर्णन किया गया है।

परचात्ताप—सोपानों की प्रत्येक सूची में प्रथम स्थान ‘वैचित्र’ (परचात्ताप) का है। यह धर्म परिवर्तन का मुसलमानी पथाप है और एक नए जीवन का प्रारम्भ लक्षित करता है। विरहात सृष्टियाँ की जीवन पथाओं में स्वप्नों, प्रतिभासित दृश्यों, नादों तथा अनुभवों का, जिनसे उन्हें पथ में प्रविष्ट होने की प्रेरणा मिली, आमतौर से वर्णन किया गया

है। य अभिलेख किने ही नगण्य क्यों न प्रतीत हों, इनका एक मनो वैशानिक आधार है और यदि ये प्रामाणिक हैं तो निस्तृत अध्ययन के योग्य हैं। पश्चात्ताप को अचेतनता रूपी निद्रा से जागना पड़ा गया है। इसका तात्पर्य यह है कि पापी अपने पापपूर्ण कार्यों से सचेत हो जाता है और अपनी रिक्त अज्ञा के प्रति पश्चात्ताप अनुभव करता है। यदि वह जिन पापों से अभिज्ञ है उनका तुरन्त परित्याग नहीं करता और यह प्रतिज्ञा नहीं करता कि भविष्य में इन पापों का कभी पुनरावृत्ति नहीं करेगा, तो वह सच्चा अनुतापी नहीं है। यदि वह अपनी प्रतिज्ञा निभाने में निफल रहे तो उस पुनः उस पुनरा (परमात्मा) की शरण लाना चाहिये, जिसकी दया असीम होती है। एक प्रसिद्ध सूरी स्थापना कर के पश्चात्ताप करने के पूर्व सत्तर बार पश्चात्ताप करके सत्तर बार पुनः पापों में लिप्त हुआ। नवदासिन का भी अपने द्वारा दानि पहुँचाये हुए लोगों का यथारुचि सम्मुख करना चाहिये। ऐसी प्रयासना के अनन्तर उदाहरण 'मुस्लिम सतों की गाथा' से एकत्र किए जा सकते हैं।

उच्च रहस्यवादी सिद्धान्त के अनुसार पश्चात्ताप शुद्ध रूप से एक इतरण करदान है, जो परमात्मा से मनुष्य को प्राप्त होता है, न कि मनुष्य से परमात्मा को। किसी ने समझा है—

“मैंने बहुत से पाप किये हैं। यदि मैं पश्चात्ताप करता हुआ इतर की शरण में जाऊँ तो क्या वह मेरे ऊपर दया करेगा?” उसने उत्तर दिया, “नहीं, बल्कि यदि वह तुम पर दया करेगा तो तुम उसकी ओर उन्मुख हो जाओ।”

पश्चात्ताप के बाद पापों का भुला देना चाहिये अथवा माद करना चाहिये—यह प्रश्न सूरी नीति शास्त्र में एक मूलभूत तत्त्व पर प्रकाश डालता है। मेरा तात्पर्य उस अन्तर से है जो नवदासिन और शिष्यों का ही गर्व सिद्धा तथा सिद्धा द्वारा माने गए गुण सिद्धान्त में होता है। कोई भी मुसलमान आध्यात्मिक निर्देशक (गुरु) अपने शिष्यों से यही

कतायेगा कि अपने पापों पर नम्रता एवं पश्चात्ताप पूर्वक विचार करना ही अध्यात्मजनित अभिनय की परमोपधि है। किन्तु उसका स्वयं यह दृढ़ विश्वास होता है कि धार्मिक पश्चात्ताप परमात्मा के सिवाय प्रत्येक वस्तु को मुला देने में ही होता है।

हुबलीरी का कथन है कि, 'अनुतापी खुदा (परमात्मा) का प्रेमी होता है और परमात्मा का प्रेमी परमात्मा के चिन्तन में मग्न रहता है, चिन्तनावरथा में पाप का स्मरण अनुचित है क्योंकि पाप का स्मरण परमात्मा एवं चिन्तनकत्ता का भण्ड एक पदा है।'

पाप का सम्बंध प्रदी (स्वसत्ता) से है, जो कि स्वयं सबसे बड़ा पाप है। पाप को भूलना अपने-व को भूलना है।

जैसा कि कहा जा चुका है, यह उस सिद्धान्त का, जो सृष्टीमय की सम्पूर्ण नीति स्थान में व्याप्त है और जिसका पूर्ण वर्णन अगले अध्याय में होगा, एक व्यवहार मात्र है। इसके प्रतरे भी प्रकट हैं, किन्तु इनमें ईमानदारी से यह मान लेना चाहिये कि आचरण नियमक एक ही सिद्धान्त उन 'वस्तुओं' के लिए जिन्होंने नैतिक अनुशासन में अपने को निपुण बना लिया है तथा उन लोगों के लिए जो अभी पूर्णत्व की उपलब्धि हेतु प्रयत्नशील हैं, समान रूप से उपयुक्त नहीं हो सकता। पश्चात्ताप के मुख्य द्वार पर यह लिखा हुआ है —

"यहाँ प्रवेश करने वालों! अपने सम्पूर्ण अपनत्व का परित्याग कर दो।"

शेखर—अब नयनीक्षित उस मार्ग पर चलता है जिसे इछाई रहस्यवादी 'शुद्धि मार्ग' कहते हैं। यदि यह सामान्य नियमों का अनुसरण करता है तो उसे एक निर्देशक (राज, पीर, मुशिद) अर्थात् गंभीर ज्ञान एवं परित्यक्त अनुभव वाले ऐसे परित्र व्यक्ति की शरण लेनी पड़ती है जिसका प्रत्येक शब्द अपने शिष्य के लिए आम्बिरी ज्ञान (ब्रह्मात्म्य) होता है। जो साधक बिना सहायता किए पथ का पार करने की चेष्टा

करता है उसे कोई सम्मानना नहीं प्राप्त होती। ऐसे साधक के लिये कहा जाता है कि शैतान ही उसका मार्ग निर्देशक होता है और उसकी उरमा उस वृत्त से दी जाती है जिसमें माली द्वारा देख रोग के अभाव में कोई फल नहीं लगते अथवा कड़वे फल लगते हैं। सूखी शेगा के बारे में बताते हुये हुजयीरी कहता है—

“जब कोई नवशिष्य सन्यास ग्रहण करने के उद्देश्य से उनका साथ पकड़ता है तो वे तीन चरणों की अवधि तक उसे आध्यात्मिक अनुशासन में रखते हैं। यदि वह इस अनुशासन में खरा उतरता है तब तो टीक है, नहीं तो वे घोषित कर देते हैं कि वह ‘पथ’ में प्रविष्ट नहीं किया जा सकता। उसे प्रथम वर्ष में जनसाधारण की सेवा में तथा द्वितीय वर्ष में परमात्मा की सेवा में संलग्न रहना पड़ता है। तृतीय वर्ष में उसे स्वयं अपने हृदय की चौकसी करनी पड़ती है। जनसाधारण की सेवा वह अभी कर सकता है जब वह अपने को संन्यस्त तथा अन्य सभी व्यक्तियों को स्वामी की भेखी में रखे, अर्थात् उसे सभी का, बिना किसी अववाद के, अपने से उत्तम समझना चाहिये तथा सब की समान भाव से सेवा करना अपना कर्त्तव्य समझना चाहिये। और हरर की सेवा वह अभी कर सकता है जब वह अपने वर्तमान या भारी जीवन सम्बन्धी सभी स्वार्थपूर्ण हितों को समाप्त कर दे और ईश्वरोपासना बसल हरर भक्ति के लिये ही करे, क्योंकि किसी वस्तु की इच्छा से परमात्मा की उपासना करने वाला स्वयं अपनी उपासना करता है, न कि परमात्मा की। अपने हृदय की चौकसी वह अभी कर सकता है जब उसके दिव्य चरित्रभूत हो जाय तथा प्रत्येक चिन्ता दूर हो जाय, ताकि परमात्मा से सम्बन्ध स्थापित होने पर वह अज्ञान के आक्रमण से अपने हृदय पर रक्षा कर सके। जब ये योग्यताएँ नवशिष्य को प्राप्त हो जाय तो वह फेरल दूसरे का अनुसरणकर्त्ता न होकर एक सच्चे रहस्यवादी की भाँति ‘मुकुताव’ (दरपशों अर्थात् भिन्नुओं द्वारा पहिना जाने वाला पन्दीदार घोंगरी) धारण कर सकता है।”

‘शिवली’ बगदाद के प्रसिद्ध थियाथोत्रिस्ट (सूफी, ब्रह्मवादी) ‘जुनैद’ का एक शिष्य था। नवधर्म ग्रहण करने पर वह एक दिन जुनैद के पास आया और बोला—

“लोग कहते हैं कि ‘इश्वरीय ज्ञान’ का मोती तुम्हारे पास है। या तो उसे मुझे द दो अथवा मेरे हाथ बेच दो।” जुनैद ने उत्तर दिया, “मैं उसे बेच नहीं सकता, क्योंकि तुम्हारे पास उसका मूल्य नहीं है और यदि मैं उसे तुम्हें दे दूँ तो यह तुम्हें बहुत सस्ते में प्राप्त हो जायगा। तुम्हें उसका मूल्य मालूम नहीं है। मेरी भाँति तुम भी इस महासागर में सर के बल डूब पड़ो ताकि धैर्य पूर्वक प्रतीक्षा करते तुम वह मोती प्राप्त कर सको।”

शिवली ने पूछा, ‘मुझे क्या करना चाहिये ?’

“जाकर गंधक बेचो,” जुनैद ने उत्तर दिया।

एक वर्ष समाप्त होने पर उसने शिवली से कहा, “इस व्यापार से तुम्हारे अच्छी क्याति हो गई है। अब तुम दरपेय (भिन्तु) हो जाओ और अपने को केवल भिदादन में ही लगाए रखो।”

पूरे वर्ष भर शिवली बगदाद की गलियों में घूम-घूम कर राहगीरों से मिठा माँगता रहा, किन्तु किसी ने उस पर ध्यान नहीं दिया। तब वह लौट कर जुनैद के पास आया, बिठने का स्वर से कहा—

“अब देरों। तुम लोगों की निगाह में कुछ नहीं रहे। कभी भी अन्न मन पर उनकी ओर न ले आओ अथवा उनकी किसी बात पर तनिक भी ध्यान न दो।” वह कहता ही गया, “कुछ समय तक तुम एक दीवान के और एक शान्त के शासक के रूप में तुमने कार्य किया था। उस प्रदेश में जाओ और उन सब लोगों से, जिनका तुमने अपवर्ग किया है, समायाचना करो।”

शिवली ने आज्ञा का पालन किया और चार वर्षों तक द्वार-द्वार रहा। यहाँ तक कि उसने प्रत्येक व्यक्ति से, सिवाय एक के मिलना

यता यह न लगा सपा, क्षमा प्राप्त कर ली। लौटने पर जुनैद ने उससे कहा—

“अब भी तुम्हारे मन में कीर्ति के लिये कुछ स्थान है। जाओ एव उप सप और भिक्षा माँगो।”

प्रत्येक दिन शिवली जा कुछ भिक्षा पाता लाकर जुनैद का दे देता वह उस भिक्षा को गरीबों को प्रदान कर देता और शिवली को दूसरे दिन प्रातः पाल तक निराहार ही रहता। जब इस प्रकार एक वर्ष बीत गया तो जुनैद ने उसे अपने शिष्यों में इस शान पर लेना स्वीकार किया कि वह दूसरों की सेवा का कार्य करे। एक वर्ष की सेवा के पश्चात् जुनैद ने उससे पूछा—

“अब तुम अपने बारे में क्या सोचत हो ?”

शिवली ने उत्तर दिया, “इश्वर द्वारा पदा किया गया सभी प्राणियों में मैं अपने को सन्तुष्ट समझता हूँ।”

शुक्र ने कहा, “अब तुम्हारा इमान (धर्म में विश्वास) पक्का हो गया।”

मुक्त इस प्रशिक्षण का—उपवास, रात्रि जागरण, मानस, दीर्घ काल तक एकान्त में रात दिन ध्यानावस्थित रहना, सत्संग अपने अस्तित्व से लड़ने के अनन्त शत्रुओं एवं सुखियों का, मिहं पैगुवर ने ‘निहाद’ (धर्म युद्ध) सभी अधिक कष्टदायक एवं धोष्ट बनलाया है—विलून पणन करने की आनन्दप्रकृति नहीं है। दूसरी तरफ मरे पाठन यह भी धारणा करते हैं कि मैं उन विशिष्ट सिद्धान्तों और अन्यासों का सामाग्य पणन करूँ बिनाक लिये ‘पय’ एक उपयुक्त नाम है। ये निम्नलिखित शरीरों के अन्तर्गत रूप का सफल है—दैन्य, तस्मा, परमात्मा में निश्वास और स्मरण। दैन्य स्वभाव निवर्षापक है, जिसमें समस्त सार्वारिक और अरामविषय वस्तुओं से सम्बन्ध विच्छेद करना पड़ता है। इसके निरर्थक शेष चीनों शब्द उस प्रकृति अर्थात् नैतिक अनुशासन के,

जिसके द्वारा 'रूह' (आत्मा) या 'हक' (परमात्मा) से समुचित सम्बन्ध स्थापित होता है, विधेयात्मक प्रतिरूप हैं।

द्वैत—इस्लाम के प्रारम्भिक काल में भाग्यवादी भावना उस पर छाई हुई थी। इस मानना ने कि मनुष्य के सभी कार्य किसी अग्न्य शक्ति द्वारा निश्चित किये जाते हैं और वे स्वतः असार एवं व्यर्थ होते हैं, वराम्ब को प्रारम्भिक मुश्किल तपश्चर्या का प्रत्यय समझना दिया। प्रत्येक सच्चा धर्मानुशासी नियम विरुद्ध भोगों से परहेज करता है, किन्तु तपस्वी नियमानुमोदित भोगों से भी परहेज करके धैर्यता प्राप्त करता है। प्रारम्भ में वैराग्य केवल भौतिक अर्थ में ही समझा जाता था। यथा सम्भव कम से कम साधारण वस्तुओं का रखना ही 'नजात' (मोल) प्राप्त करने का सुदृढ़ साधन माना जाता था। दाऊद अल-ताई अपने पास सूत की एक चटाई, तकिये की भाँति इस्तेमाल करने के लिए एक ईंट तथा पीने एवं स्नान के जल के लिये एक चमचा के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं रखता था। किसी व्यक्ति ने रमल में देखा कि मालिक-इब्न दीनार तथा मुहम्मद इब्न-बासी रमल में ले जाये जा रहे हैं तथा मालिक को अपने साथी से पहले प्रणु किया जा रहा है। यह आश्चर्य से चिल्ला उठा, क्योंकि उसके विचार से मुहम्मद इब्न-बासी अपने साथी की अपेक्षा इस सम्मान के अधिक हज़दार थे। उसको उत्तर मिला, 'हाँ ऐसा ही है, किन्तु मुहम्मद इब्न-बासी के पास दो पत्नीयें थीं और मालिक के पास केवल एक। इसी कारण मालिक को अधिक प्रतिष्ठा दी गई।"

सृष्टियों का दिव्य का आदर्श इसमें भी चटकर है। सच्चा दैवत केवल सम्पत्ति का अमान नहीं बल्कि सम्यक्ता की इच्छा का भी अमान है। अर्थात् हृदय और हाथ दोनों गानी रहने चाहिए। मुसलमान रहस्यवादी का 'जज़ीर' (निषेध) तथा 'दख़ैर' (मित्त) जैसे नामों से पुकारे जाने का गय होता है। यह शब्द यह सूचित करते हैं कि उसने अपने मन को ईश्वर की ओर से इगने वाले प्रत्येक विचार अथवा इच्छा का परि

पर निर्भर रहता है। अपनत्व का अभाव ही सूखी को पत्ती से ऊपर उठाता है।

दरवेशों के लिये कुत्र नियम इस प्रकार हैं —

“जब तक तुम क्षुधापीडित न हो, भिक्षा मत माँगा। प्रलीना उमर ने एक व्यक्ति को, जो अपनी क्षुधा शान्त करने के बाद भी भिक्षा माँगता रहा, कोढ़ों से पीटा। भिक्षा माँगने के लिये या य होने पर भी अपनी आवश्यकता से अधिक न ग्रहण करो।”

सुशील और निमग्न बनो तथा अपने दैन्य के लिये ईश्वर को धन्यवाद दो।”

“भिक्षा देने के लिये घना व्यक्तियों की चापलूसी न करो और न देने के लिये उनकी निंदा भी मत करो।”

“कितना घनी व्यक्ति अपना मन खाने से डरता है उससे अधिक अपना दैन्य तो देने से डरो।”

“जा कुछ खे-छा से दिया जाय, वही ग्रहण करो वही तुम्हारा दैनिक भोजन है जो ईश्वर तुम्हें भजता है। ईश्वर के दान का अस्वीकार मत करो।”

“कल (मयित्य) की कोई चिन्ता अपने मन में मत खान दो, नहीं तो अनन्त अश्वत्थन के भागी बनोगे।”

“ईश्वर का भिक्षा रूपी चिड़िया पकड़ने का जाल मत बनाओ।”

नरस्—यही गुरुओं ने क्रमशः तपस्या और नैतिक उत्थान की ऐसी प्रणाली का निमात्र किया है, जिसका आधार यह तथ्य है कि मनुष्य में भुराई का एक मूल तन्त्र अथात् निम्नतर या लालसापूर्ण आत्मा होती है। यह पापयुक्त आत्मा, जो प्रेम, मोक्षादि भावों तथा कामेच्छा का निवास स्थान है ‘नरस्’ कहलाती है। स्थूल रूप से इसे नियम पाठना समझ सकते हैं और अपने मित्रों, सखार और शत्रुओं, की तरह यह परमात्मा से मिलन प्राप्त करने में बहुत बड़ी बाधा उपस्थित करती है। ईश्वर साहब ने कहा है, “तेरा सखत गुण गुप्त तेरा ‘नरस्’

सकता है किन्तु अब हमें उच्चतर नैतिक अनुशासन तक आगे बढ़ चलना चाहिये, जिससे 'पथ' की परिपूर्णता प्राप्त होती है।

जैसा कि ज्ञानरूढ़ सूक्तियों का विचार है, आत्म-समम मनुष्य की अन्तरात्मा के नैतिक परिवर्तन की क्रिया है। अब वे कहते हैं कि 'अपनी मृत्यु से पहले मरो' का इसका सार्वभौमिक यह नहीं होता कि 'नप्सु' (निम्नात्मा) का विनाश आवश्यक रूप से स्वीकार किया जाय वरन् इसका सार्वभौमिक यह होता है कि 'नप्सु' को उसकी समस्त विरोधताओं से जो पूर्णतः दूरी होती है, शुद्ध कर लिया जाय। ये विशेषताएँ—अज्ञान, अमिमान, ईर्ष्या, अनुदायता आदि—क्षीण हो जाती हैं और इनका स्थान इनका प्रतिद्वन्द्वी गुण ल लेते हैं। किन्तु यह सभी सम्भव है, जब इच्छाएँ परमात्मा को अर्पित कर दी जायें और मन उस पर केन्द्रीभूत हो जाय। इसलिए 'आत्म दमन' बाल्य में परमात्मा में निवास कराना है। अगले अध्यायो के अधिवास भाग में ऊपर बतलाए हुये सिद्धान्त के रहस्यवादी पहलू का वर्णन किया जायगा, किन्तु यहाँ हमारा सम्बन्ध मुख्यतः इस नैतिक सार्वभौमिक से ही है।

जिस सूत्री ने अपनी इच्छाओं को निमूल कर दिया हो उसे पारिभाषिक भाषा में 'ज्ञानन्दावरणा' अर्थात् 'रिक्ता' (सतोष) तथा 'तपस्कूल' (परमात्मा में विश्वास या भरोसा) के स्रोतों पर पहुँचा हुआ कहा जाता है।

एक दरवेश टिमिठ नदी में गिर पड़ा। उसे तैरने में असमर्थ देता कर विनार पर स एक आदमी चिल्लाया, "क्या मैं किसी से कह दूँ कि यह तुम्हें विनारे पर निकल लाये?" "नहीं!" दरवेश ने उत्तर दिया। "तो क्या तुम डूब मरना चाहते हो?" "नहीं!" "तो फिर तुम्हारी क्या इच्छा है?" दरवेश ने उत्तर दिया, "जो ईश्वर की इच्छा होगी, वही होगा। मुझे इच्छा करने से क्या मतलब?"

'तपस्कूल' या परमात्मा पर भरोसा—अपने अन्तिम रूप में 'तपस्कूल' का सम्बन्ध अनेक व्यक्तिगत पहलू तथा आध्यात्मिक के परि

तुम्हारे विचार और वाणी प्रष्ट हैं क्योंकि तुम्हारे दूसरों के हेतु कार्य करने का कारण आशा अथवा भय है। और जब तुम सब वस्तुओं के स्वामी तथा आश्रयदाता परमात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी की आशा या भय से कार्य करते हो तो एक अन्य देवता की उपासना तथा सम्मान का नित्य अपने ऊपर ले लेते हो।”

‘दूसरे यह कि जब तुम इस सन्धे विरमास के साथ कि सिवाय उसके दूसरा कोई परमात्मा नहीं है, बोलते या कार्य करते हो तो तुम्हें उस पर सत्कार, सम्पत्ति, सेवा, पिता अथवा माता अथवा पृथ्वीतल पर रिपत किसी भी वृत्ति से अधिक भरोसा रखना चाहिए।

“तीसरे यह कि जब तुम इन दो चीजों अर्थात् परमात्मा की एकता में निष्कण्ट विश्वास तथा उस पर भरोसा रखने में दृढ़ता प्राप्त कर लो, तो तुम्हारे लिए यह योग्य है कि तुम उससे सन्तुष्ट रहो और किसी भी ऐसी बात पर, जो तुमको उद्दिष्ट करती हो, क्रोध न करो। क्रोध से सावधान रहो। अपने हृदय को सदैव परमात्मा का समिष्ट रखो और उसे एक क्षण के लिये भी परमात्मा से विलग न होने दो।

‘तनकुली’ सूत्री को वर्तमान क्षण से आगे अन्य किसी वस्तु का ध्यान नहीं रहता। एक अवसर पर शङ्कीफ ने उन लोगों से, जो बैठे हुये उसका उपदेश सुन रहे थे, पूछा —

“मदि ईश्वर तुम्हें आज काल का प्रास बना दे तो क्या तुम समझते हो कि वह कल की प्रार्थना या तुमसे वक्राज्ञा करेगा ?” उन लोगों ने उत्तर दिया, “नहीं, जिस दिन हम जीवित ही न रहे उस दिन की प्रार्थना या वक्राज्ञा वह हमसे कैसे कर सकता है ?” शङ्कीफ ने कहा, “जिस प्रकार वह कल की प्राथना का वक्राज्ञा तुमसे नहीं करेगा, ठीक उसी प्रकार तुम भी उससे कल का भोजन मत माँगो। हो सकता है कि तुम इतने समय तक जीवित न रहो।”

‘तनकुली’ पर निर्भर रहने का प्रयत्न करने के व्यावहारिक परिणामों को देखते हुये इस सिद्धान्त को पूर्ण रूप से निमाने वालों को दी गई

करन, याद करने अथवा केवल मनन करने से है। कुरान में धर्म पर ईमान लाने वालों को आदेश दिया गया है कि “ईश्वर का स्मरण प्रायः करते रहो।” यह उपासना की बहुत साधारण क्रिया है, जिसमें रहस्यवाद की कोई गंध नहीं है। किन्तु सूफियों ने अल्लाह का नाम या किसी धार्मिक सूत्र को अपने का नियम बना लिया था, जैसे “सुम्हान अल्लाह” (परमात्मा की जय हो) “ला इलाह इल्लुल्लिहा” (सिवाय परमात्मा के और कोई देवता नहीं है)। वे इन्हें यत्रवत्र स्वरसहित गाने से तथा अरबों प्रत्येक मानसिक शक्ति को किसी एक शब्द या शब्द समूह पर सम्पूर्ण रूप से केंद्रीभूत करते थे। वे इस अनियमित प्रार्थना को, जो उन्हें परमात्मा से अबाधित मिलन का आनन्द उद्भूत योग्य बनाती है, पाँच बार की नमाज़ से, आठ दिनरात के निश्चित घंटों पर सब मुसलमानों द्वारा पढ़ी जाती है, अधिक महत्व देते हैं। स्मरण या ज़रत चरित या मोन दाना प्रकार से ही सपना है। किन्तु सामान्य मतानुसार सर्वोत्तम यही है कि मन और वाणी एक दूसरे से संयोग करें। सहल इब्न अब्दुल्लाह ने अपने शिष्यों में से एक को आदेश दिया कि वह सारे दिन बिना ‘लैलिक रिजम’ के “अल्लाह ! अल्लाह !” कहने का प्रयास करे। जब उसकी ऐसा करने का आदेश पढ़ गई तब साहल ने उसका उन्हीं शब्दों की रात्रि में उस समय तक ज़रत का निर्देश दिया जब तक कि मुमुनापरवा में भी वे उसने सुन से उच्चरित न होने लगे। “अब तुम मौन हो जाओ और अपने का उनका स्मरण में लगाए रहा।” अततागमा शिष्य का सारा अस्वप्न परमात्मा का ध्यान में लीन हो गया। एक दिन एक लफ़्फ़ी का फुंदा उसके सिर पर गिर पड़ा और लोगों ने देखा कि घाव से टपकने वाले खून में ‘अल्लाह, अल्लाह,’ शब्द लिखे हुए हैं।

गुजाली ने ‘ज़िस्’ की रीति और उसका प्रभावों पर वर्णन एक तुल्य में किया है, जिस भक्शान ने सत्तर में इस प्रकार किया है—

“वह अपने हृदय की ऐसी अवस्था बना दे, जिसमें किसी वस्तु की सच्चा और उसका अभाव उसका लिए समान ही हो। तब वह अपने धार्मिक कृत्यों का अभावश्यक कर्तव्यों तथा सीमित करके किसी करने में बैठकर एकान्त-संनन करे। वह स्वयं को कुरान पढ़ने अथवा उसका अथ समझने, धार्मिक परम्पराओं के कृत्यों का अध्ययन करने या इस प्रकार की किसी भी बात में न व्यस्त रहे। ध्यान रखना चाहिए कि विनाय सर्वोच्च परमेश्वर के कोई दूसरा भाव उसका मन में न आने पाए। तब वह एकान्त में बैठकर अपनी वाणी से लगातार अल्लाह अल्लाह' बिना रुक-रुक कर और अपने विचारों का एक ही शब्द पर कन्द्रित रहे। अन्त में वह ऐसा अवस्था का प्राप्त हो जायेगा, जहाँ वाणी की गति इन बाधाओं और ऐसा प्रवृत्त होगा जाना शब्द स्वयं उसकी वाणी से उद्भवित हो रहा है। वह इसका निम्नरश्मि प्राप्त करता रहे, जब तक कि उसका वाणी से गति के समस्त बिन्दुन लुप्त न हो जायें तथा वह अपने हृदय को विचारों में निमग्न न पाले। फिर भी वह तब तक अभ्यास जारी रखे, जब तक कि शब्द का स्वरूप, इस-अन्तर तथा आहूति उसका हृदय से निट न जाए तथा अपने विचार ही पर न हो जाय और वह भी इस प्रकार जाना यह हृदय से चिन्ता हुआ और अविरोध है। यहाँ तक तो सब कुछ उसका सकल और इच्छा पर निर्भर है किन्तु ईश्वर की दया प्राप्त करना उसका इच्छा शक्ति या पक्ष में नहीं है। अब उसने स्वयं को उस दया के स्वास प्रसास के समस्त नमन रूप में दाह दिया है और सिखाया यह प्रतीति करने के, कि ईश्वर उस पर क्या प्रकट करता है, ऐसा कि ईश्वर ने इसी प्रकार के अभ्यास के पश्चात् पैगम्बरों तथा सन्तों पर किया है, उस और कुछ करता शय नहीं रह जाता। यदि वह उन्मुख रूप से चलता है तो उस विरासत रखना चाहिए की 'हक' (परमात्मा) की शक्ति उसका हृदय में चमक उठेगा। यह पहल तो सिखाने की भाँति अस्थिर होगा—कभी प्रकट होगी, कभी अदृश्य और कभी कभी लुप्त रह जाएगी। यदि यह स्रोत

घाती है तो कभी टिकाऊ होती है और कभी क्षणिक और यदि यह टिकाऊ होती है तो इसका टिकना कभी दीर्घकालीन होता है और कभी अल्पकालीन ।”

एक दूसरे सूत्र ने इस विषय का सापेक्ष एक ही वाक्य में इस प्रकार कहा है —

“जिज्ञा की पहली सीढ़ी निश्चय का भूलना है और अन्तिम सीढ़ी उपासक का उपासना कार्य में इस प्रकार लुप्त हो जाना है कि उसे उपासना की चेतना ही न रहे और वह उपास्य में ऐसा लयलीन हो जाय कि उसका स्वयं तक लौटना प्रतिषिद्ध हो जाय ।”

जिज्ञा या स्मरण में विभिन्न उपायों की सहायता ली जा सकती है । जब शिबली एक नौसिलिया था तो वह निम्न छदियों का एक गठुर लेकर एक सहजाने में घुस जाता था । यदि उसका ध्यान इधर-उधर चटकता तो वह छदियों से अपने को उस समय तक पीटता जब तक कि वे टूट न जातीं और कभी कभी तो सारा गठुर संघ्या से पूर्व ही समाप्त हो जाता और तब वह अपने हाथों और पैरों को दीवार पर पटकता । प्राणायाम की भारतीय विधि भी नहीं छतानी के छदियों को शांत थी और बाद में इसका प्रयोग भी लूठ हुआ । दरवेशों की समान व्यवस्था में सद्गीत गायन और नृत्य समाधि-दशा प्राप्त करने का अनुकूल साधन माने गए हैं । इस अवस्था को ‘जना’ (लय हो जाना) कहते हैं और यह, जैसा कि उपर्युक्त परिभाषा से प्रकट होता है, इस पद्धति का चरमोत्कर्ष तथा इसका अस्तित्व का मूल कारण है ।

सुगन्धित या ध्यान—बौद्ध धर्म में प्रचलित ‘ध्यान’ और ‘समाधि’ की भाँति ‘सुगन्धित’ भी एकप्रचलित होने का एक रूप है । जब पैगम्बर ने यह कहा कि “ईश्वर की उपासना इस प्रकार करो माना तुमने उसे देखा है क्योंकि यदि तुम उस नहीं देखने का तो भी वह तुम्हें देखता है”, तो उनके तात्पर्य भी यही था । जिस व्यक्ति का यह विश्वास है कि परमात्मा सदैव उसकी ओर देखता रहता है वह स्वयं को ईश्वर के

ध्यान में लगाये रखेगा और कोई भी बुरे विचार तथा पापपूर्ण सफ़त उसके हृदय में प्रविष्ट नहीं हो सकेगी । नूरी इतनी दृढ़ता व साध ध्यान मग्न होता था कि उसके शरीर का एक बाल भी नहीं हिलता था । उसका कहना था कि उसने यह आदत एक बिल्ली से जो एक घूँह व बिल को ठाक रखी थी, सीखी थी और यह उससे कहीं अधिक शान्त थी । अब्दुल्लाह इब्न अबुल्लैर अपनी दृष्टि अपनी नाभि पर स्थिर लगाये रहता था । कहते हैं कि इस प्रकार ध्यानावस्थित व्यक्ति व निकट आने पर चीतान को अस्माभार रोग हो जाता है । ठीक उसी प्रकार उस मनुष्य को उस पर शतान का अधिकार हो जाने पर हाता है ।

यदि यह अभ्यास मरे पाठकों व समस्त उन मुख्य रीतियों का, जिनके अनुसार सूफ़ी व प्रारम्भिक प्रशिक्षण चलता है, एक स्पष्ट दृश्य उदरस्थित कर सक, तो इसका उद्देश्य पूर्ण हो जायगा । अब हमें यह कल्पना कर लेनी चाहिये कि साधक को उसने 'शर' (गुरु) ने 'मुस्क़ात' अथवा 'निरक़त' (पैन्द लगा हुआ अंगरुपा) प्रदान कर दिया है, जो इस बात का दाता है कि उसने 'पथ' व अनुशासन का सफलता पूर्वक पार कर लिया है और अब वह अनिश्चित पगों से प्रकाश की ओर उड़ रहा है, ठीक वैसा ही जैसे परिश्रम से भक्त हुये पथिक गहरी घाटी से निकल कर चितार पर पहुँचते ही बकायक गुम की मलक पाकर अपनी आँखें मूँद लेते हैं ।

द्वितीय अध्याय

प्रकाश-प्राप्ति और आह्लाद

ईश्वर, जिसे कुरान में 'पृथ्वी और स्वर्गों का प्रकाश' कहा गया है, शारीरिक चक्षुषों द्वारा नहीं देखा जा सकता। वह केवल हृदय के आन्तरिक चक्षुषों को ही दृष्टिगोचर होता है। अगले अध्याय में हम इस आध्यात्मिक अवयव का पुनः वर्णन करेंगे, किन्तु मैं सूफ़ी मनोविज्ञान की गूढ़ताओं में जितना ध्यानस्थ है उससे अधिक प्रवेश नहीं करूँगा। 'रूपातु-ल-कलम' (हृदय की दृष्टि) की परिभाषा "हृदय का अक्षय्य लोक में छिपी हुई निश्चयात्मकता का प्रकाश का खेलना" के रूप में की गई है। जब अली से यह पूछा गया कि "क्या तुम ईश्वर को देखते हो?" और उन्होंने उत्तर दिया कि "जिस हम देखते नहीं उसकी उपासना कैसे करेंगे?" तो उनका ज्ञान इसी से था। 'यकीन' (अवज्ञान से प्राप्त निश्चयात्मकता का प्रकाश) जिसका द्वारा हृदय ईश्वर को देखता है वह ईश्वर के स्वप्रकाश की एक किरण है जिसे ईश्वर ने स्वयं हृदय में डाल दिया है अन्यथा उसका कोई भी स्वयं प्रतिभासित होना सम्भव नहीं है।

"यस समय अपने ही प्रकाश में देखा जा सकता है।"

कुरान का प्रसिद्ध अनुच्छेद^१ की, जिसमें अल्लाह की रोशनी की तुलना दीवार के तारों में खींची पारदर्शी शीश वाली लालटेन के भीतर बलती हुई मोमबत्ती से की गई है, रहस्यमयी "पारया" का अनुसार यह तात्पर्य है ईमान लाने वाले (यमात्मा) का हृदय ही है। अतएव उसकी वाणी प्रकाशयुक्त है, उसके कार्य प्रकाशयुक्त हैं और वह प्रकाश में ही चलता फिरता है। गायत्रीद ने कहा था कि "जो व्यक्ति

१—अल्लाहो नूरुम्ममायाति यल अर्द । —कुरान २४

अनन्त (नित्यता) की बातचीत करता है उसे अपने अंत कण में अनन्त का दीवक अवश्य रगना चाहिये ।”

ज्ञान प्राप्ति रहस्यवादी के दृष्ट्य में समझ उठने वाला प्रकाश उसे परीक्षण की अलौकिक शक्ति प्रदान करता है । इस 'विशेषतः' कहते हैं । यद्यपि अन्य सभी मुसलमानों की भाँति सुज़ी लाग भी मुहम्मद साहब को पैगम्बरों में एक ही अन्तिम मानते हैं—(एक भिन्न दृष्टिमान्य व अनुसार यह सृष्टि व सर्वप्रथम जीव है) ता, भी व यास्त्र में प्रेरणा का लघु रूप ही प्राप्त करने का दावा करते हैं । जब नूरी व रहस्यवादी 'गिरासन' उद्भव व बारे में प्रश्न किया गया तो उसने बुरान का उस चायत म उद्घाटन देत हुए उत्तर दिया, जिसमें परमात्मा ने कहा है कि उसने अपनी रूह आत्म में पूरी । किन्तु अधिक बहुर सुज़ी जा इस्लाम की रूह (आत्मा) के अनादि एव अनन्त होने व सिद्धान्त का प्रत्यक्ष स्वरूप करने हैं उनका निरवयवक कथन है कि 'गिरासन' ज्ञान और अन्तर्दृष्टि (परीक्षण शक्ति) का परिणाम है जिस ग्राह्य रूप से प्रकाश अथवा ईश्वरीय प्रेरणा कहा जाता है और जिसे परमात्मा उत्तर करके अपने प्रिय मन्त्रा को प्रदान करता है । यह परम्परागत कथन कि, 'सच्चे धर्मात्मा की ऐसी दृष्टि व शक्ति कदापि यह अल्लह व प्रकाश में देखता है" निम्नलिखित उपाख्यान में दृष्टान्त देकर समझना गया है—

अबू अब्दुल्लाह अल-राज़ी ने कहा, “इन्स अल अशरी ने मुझ एक उन्नी अगला भेंट किया और शिखी व खिर व एक विस्त्राण देकर, जो थीर इस अनुकूल था, मेरे मनमें यह इच्छा उत्पन्न हुई कि व दाना नरे ही हात । जब शिखी खाने व लिए उठा तो उसने मेरी ओर दृष्टिगत किया क्योंकि मुझे अपने पीछे पीछे ले चलने के लिए ऐसा करने की, उसकी आदत बन गयी थी । मैं उसकी पीछे-पीछे उससे पर रह गया । अन्दर पहुँचने पर उसने मुझ अना अगला उधार देने की आज्ञा दी । उसने इस मुझसे लेकर वह किया और अना शिखी इसके

ऊपर फेंक दिया, तब उसने धाग मँगवाकर अँगरला और शिरज्जाश दोनों को जला दिया ।”

सरीउल-सफ़वी बार-बार जुनैद से अनता के बीच मापण देने का आग्रह किया करता था, किन्तु जुनैद राज़ी नहीं होता था क्योंकि उसे अपने को ऐसे सम्मान के योग्य होने में सन्देह था । एक शुक्रवार की रात्रि में उसने स्वप्न देखा कि पैगम्बर ने प्रकट होकर उस अनता के बीच मापण देने का आदेश दिया । वह जाग उठा और दिन निकलने के पूर्व सरी के घर पहुँच कर उसका दरवाजा खटखटाया । सरी ने द्वार खोलकर कहा “अब तब पैगम्बर स्वयं आकर तुमसे न कहते, तुम मेरी बात का विश्वास न करते ।”

सहल इब्न-अब्दुल्लाह बामा मस्जिद में बैठे थे । उसी समय एक कबूतर अत्यधिक गमी से पीड़ित होकर प्रार्थना पर गिर पड़ा । सहल ने चिल्लाकर कहा, “छुदा की रहमत, शाह अल किरमानी की अभी अभी मृत्यु होगई है ।” लोगों ने इसे निरा लिया और बात सच्ची पायी गयी ।

अब हृदय पाप और बुरे विचारों से शुद्ध हो जाता है तो इस पर निश्चिन्तात्मकता का प्रकाश पड़ता है, जो इसे चमकता हुआ दर्पण बना देता है यहाँ तक कि गैतान इसका निबट अन्देश नहीं आ सकता । इसीलिए किसी ज्ञानमार्गी ने कहा है “मेरा अपने हृदय की अग्रा परमात्मा की अग्रा करना है ।” एक ऐसे ही प्रकाशप्राप्त व्यक्ति से पैगम्बर ने कहा था, ‘अपने हृदय की सम्मति लो और तुम्हें हृदय का आन्तरिक ज्ञान द्वारा धारित परमात्मा का गुण आदेश सुनाई पड़ेगा । यही सम्मति निष्ठा एवं दृष्टि है ।’ यह खील भर्त्सनाओं का सीराने स कही अधिक भेद्य है । मुक्त आगामी अध्याय में विवेचना किए जाने वाले इस प्रश्न पर पहले से विचार करने की आवश्यकता नहीं है कि एक अध्यान्त सद्विषयक व दावों संवाह्य धर्मार्थ नैतिकता का कहाँ तक समाधान किया जा सकता है । पैगम्बर (मुहम्मद साहब) भी परमात्मा से यही प्रार्थना

करते थे कि वह उनके ध्यान एवं श्रान्त में प्रकाश बाले । श्रान्त शरीर का समस्त श्रमों का नामोन्धारण करके वह श्रान्ती मार्थना इस प्रकार समाप्त करने थे, “और मरा समस्त शरीर एक प्रकाश बना दे ।” कम से बढ़ते हुए तेज का प्रकाश से रहस्यवादी देवी गुणी व चिन्तन तर ऊपर उठता है और अन्तर्लोकता जब उसकी चेतना पूर्णरूप से सुप्त हो जाती है तो उसका देवी सत्य की चान्ति में रूपान्तर (तबीहर) हो जाना है । यह सुरत (इहसान) की स्थिति है, क्योंकि, “परमात्मा नेकी करने वालों का साथ होता है ।” और हमारे पास पैगम्बर का अधिनारपूर्ण वचन है कि “परमात्मा की इस प्रकार उपासना करना कि माना तू उसे देख रहा है, ही ‘इहसान’ करना है ।”

प्रकाश प्राप्ति (पोष) का विभिन्न भेषियों का वर्गीकरण और बान्धन करने का प्रकाश करके मैं समय और श्रान्त पाठकों का धैर्य का दुस्वयोग नहीं करूँगा । इनका वर्णन प्रतीकानुसार दस स रिया का करता है, किन्तु इनकी व्याख्या वैज्ञानिक भाषा में नहीं की जा सकती । हमें रहस्य वाचियों का श्रान्त भार में स्वयं ही धारण का अवसर देना चाहिये । माना कि उनकी शिक्षाएँ बहुत कठिनाई से समझ में आती हैं, फिर भी य चितना हम विश्वास और स्मरणीयता से प्राप्त करने का आशा कर सकते हैं, उससे अधिक सत्य का प्रतिपादन करती हैं ।

यहाँ प्रारम्भ माया में मूर्खता पर सक्षम प्राचीन ग्रन्थ दुबाराई का “कस्तुरी-महगूँ” से दो अर्थ दिय जा रहे हैं —

“कताग जाता है कि सरी छल सज्जी न कहा, ‘हे ईश्वर तू मुझे चाह का दर्श दे, किन्तु मुझे श्रान्त दर्शन से चित्त करने का दर्श न दे, क्योंकि यदि मैं तर दर्शन से चंचित नहीं रहता तो मरे स्नेह और सन्तार तरे स्मरण एवं चिन्तन से कम हो जायेंगे । किन्तु

१—इन्नाल्हा लमध्यम् मुहसनीन ।

—दुरान - ६ ६६

२—अलइहमानु अल साबुदल्लाह कमअन्नक सराहु । —हदीम

यदि मैं तेरे दर्शन से वंचित रहता हूँ तो तेरी उदारता भी मेरे लिए मयकर हो उठेगी। परमात्मा के दर्शन से वंचित रहने से बदपर अछद नीय और कष्टदायक कोई दूसरा दण्ड नरक में नहीं है। यदि परमात्मा नरकवासियों के समस्त प्रकट हो जाय तो धर्म में विश्वास रखने वाले पापात्मा स्वर्ग के द्वार में कभी नहीं सोचेंगे, क्योंकि परमात्मा को देखकर उन्हें हृषातिरेक में शारीरिक पीड़ा का आभास नहीं होगा। स्वर्ग में परमात्मा के साक्षात्कार से बढ़कर पूर्ण अन्य कोई आनंद नहीं है। यदि स्वर्ग के लोग यहाँ के समस्त आनन्दों एवं अर्थ आनन्दों का सौगुना उपभोग करें, किन्तु परमात्मा के दर्शन से वंचित रहें, तो उनके हृदय पूर्णरूप से टूट टूट हो जावेंगे। इसलिए परमात्मा की यह रीति है कि वह उन लोगों के हृदयों में, जो उससे प्रेम करते हैं सदैव प्रतिभासित होता रहे ताकि उसकी प्रसन्नता उन्हें प्रत्येक वातना को सहन करने के योग्य बना दे और वे अपने प्रतिभासित दृष्टां में कहें उठें, 'हम तेरे दर्शन से वंचित होने की अपेक्षा सनस्त सन्तापों को अधिक वाञ्छनीय समझते हैं। जब तेरा सौन्दर्य हमारे हृदयों के समस्त प्रकट हो जाता है तो हम कष्टों का कोई परवाह नहीं करते।"

चिन्तन यास्तव में दो प्रकार का होता है, प्रथम तो पूर्ण निष्ठा के परिणामस्वरूप और दूसरा प्रेमोन्माद के परिणामस्वरूप। क्योंकि प्रेमोन्माद में मनुष्य उस अरुणा को प्राप्त हो जाता है, जिसमें उसका सम्पूर्ण अस्तित्व अपने प्रिय (इष्ट) के ध्यान में निमग्न हो जाता है और वह कोई अन्य वस्तु नहीं देखता। मुहम्मद इब्न वासी ने कहा था, 'मैंने कभी कोई वस्तु ऐसी नहीं देखी जिसमें मैंने परमात्मा को न देखा हो।' अर्थात् वह प्रत्यक्ष वस्तु को ईश्वर में पूर्ण निष्ठा के साथ देखता था। शिष्यो का कथन है कि, 'सिखाया परमात्मा के मैंने कभी कोई वस्तु नहीं देखी। अर्थात् उसमें प्रेमोन्माद और चिन्तन का उन्माद मय हुआ था। एक रहस्यवादी किसी कार्य को अपनी शारीरिक शक्तों से दृष्टा है और उसके दृष्टिगत करने ही उसे उसकी आध्यात्मिक दृष्टि के समत

उस कार्य को करने वाला (परमात्मा) लिखाई पढ़ जाता है । दूसरा रहस्यवादी अन्य सभी वस्तुओं को देखकर परमात्मा के प्रेम में आकाशित हो उठता है, यहाँ तक कि उस सबल परमात्मा ही लिखाई पढ़ता है । एक विधि प्रमाणदायक है और दूसरी आनन्ददायक । प्रथम दशा में ईश्वर के साक्ष्यों से एक नव प्रमाण निनाला जाता है और दूसरी दशा में देखने वाला आकाशित शम्भु ईश्याओं से परे हो जाता है । साक्षर उसने लिये आशरण के समान हाथों में क्योंकि जो व्यक्ति किसी वस्तु को जानता है वह उससे अनिरिक्त अन्य किसी वस्तु की परवाह नहीं करता और जो किसी वस्तु से प्रेम करता है वह उससे अनिरिक्त अन्य किसी वस्तु का आदर नहीं करता, बल्कि वह परमात्मा के सम्यक् में सब निरक्त करने से तथा परमात्मा की सत्ता और उसकी व्यवस्थाओं एवं कार्यों में हस्तान्तर करने से निरक्त हो जाता है । जब प्रेमी सासारिक वस्तुओं से अपनी दृष्टि फेर लगा तो उसका अन्त करण मूढ़ता का दर्शन अनिवार्य रूप से पा जायगा । बुद्धा का वचन है, 'इमान लान वाला से बड़ो कि अपनी आँखें बन्द कर लें' ।^१ अर्थात् अपनी शारीरिक आँखें दिव्यों के प्रति मूढ़ लें तथा अपनी आध्यात्मिक आँखें (अन्तर्बुद्धि) सृष्टि की (साधारण) वस्तुओं से फेर लें । जो इन्द्रियमन में संशयित रहता होता है वही ईश्वर चिन्तन में संशयित रहता है स्थानित होता है । गुलर निवासी सहूल इन्त अन्दुल्लाह का वचन है कि, यदि बाद अपनी आँखें बुद्धा की ओर से लक्ष्य मार के निष्ट भी करने कर ले तो उस समस्त जीवन भर सही मार्ग नहीं दिखाई पड़ेगा क्योंकि परमात्मा के सिवाय अन्य किसी का मानना स्वयं का परमात्मा का छोड़कर अन्य के हाथों सौंप देना है और जो परमात्मा का छोड़कर अन्य की दया पर निर्भर होता है वह गुमगाह हो जाता है । शरीरनिष्ठ चिन्तनवृत्ता अपना जीवन उठने ही समय तक मानता है, जब तक कि

१—गुलर लिलमुमिनीन यमुह मिन अयमारिहिम ।

—श्रुतन = २३३

यह चिन्तन में मग्न रहता है। याह दृश्यों को देखने में बिताये गए समय की गणना वह अपनी आयु में नहीं करता, क्योंकि यह उसके लिए वास्तव में मृत्यु ही होती है। इसी भाँति जब बापजीद से पूछा गया कि उसकी आयु कितनी है, तो उसने उत्तर दिया, 'चार वर्ष।' लोगों ने उससे पूछा कि ऐसा कैसा हो सकता है ! उसने उत्तर दिया, "मैं इस संसार द्वारा परमात्मा के दर्शन से उत्तर क्यों तब वंचित रखा गया, किन्तु तब चार वर्षों से मैं उसे (परमात्मा को) देख रहा हूँ। जितने काल तक कोई परमात्मा के दर्शन से वंचित रहे, वह उसके जीवन का भाग नहीं हो सकता।"

मैं निम्नलिखित उद्धरण निम्नकारी की पुस्तक 'भक्तिक्रिया से दे रहा हूँ। इसका अधिक परिचय हम आगे चल कर प्राप्त करेंगे—

"परमात्मा ने मुझसे कहा, 'साक्षिण्य विद्या का न्यूनतम रूप यह है कि तुम प्रत्येक वस्तु में मुझे देखने का प्रमाण अनुभव करा और इस प्रतिभाषित दृश्य का तुम्हारे ऊपर तुम्हारे मुझ सब की ज्ञान की अपेक्षा, अधिक प्रमाण होना चाहिये।' भाग्यकार ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है —

"उसका तात्पर्य है कि साक्षिण्य विद्या (देखने का समीप होना) का न्यूनतम रूप यह है कि जब तुम किसी वस्तु को पाथ इन्द्रियों द्वारा अधवा बौद्धिक रूप से या अन्य प्रकार से देखा तो तुममें वह चेतना होनी चाहिये कि जितना तुम उस वस्तु को देखा रहे हो उससे अधिक सत्य रूप से तुम परमात्मा को देख रहे हो। इस विषय में विभिन्न दृष्टान्त होती हैं। कुछ रहस्यवादी कहते हैं कि वे किसी वस्तु को बिना उसके पूर्ण अस्तित्व को दान हुये नहीं देते। दूसरे रहस्यवादी 'बिना उसका पीछा अज्ञात को गेरा हुय' अथवा 'उसका साथ अज्ञात का देवना' कहते हैं या वे यह कहते हैं कि अज्ञात परमात्मा के वे अन्य कुछ भी नहीं देते। किसी गुरु ने कहा, "मैंने 'हम' किया और 'व्यथा' देखा किन्तु 'काना' दिया

प्राप्ति को नहीं देगा ।” यह उस व्यक्ति का बोध है जो परमात्मा के दर्शन से वंचित है । सब उसने फिर कहा, “मैंने फिर ‘हज’ (मक्का की तीर्थ यात्रा) किया और ‘काबा’ और उसमें स्थित खुदा मोना को देखा ।” यह परमात्मा के अस्तित्व का चिन्तन है, जिसका द्वारा प्रत्येक वस्तु को जीवन मिलता है । अर्थात् उसने ‘काबा’ का अस्तित्व काया के प्रभु के द्वारा देखा । तब उसने फिर कहा “मैंने तीसरी बार हज किया और इस बार मुझे ‘काबा’ का स्थित खुदा ही दिखाई पड़ा, ‘काबा’ नहीं दृष्टिगत हुआ । यह ‘क़ुत्त’ (तब में मिल जाने) की स्थिति है । यत मान अक्सर परलक्षण परमात्मा के अस्तित्व के चिन्तन की ओर निर्देश कर रहा है ।”

अभी तब जा कुछ कहा गया वह प्रकाश प्राप्ति (बाध) के सिद्धान्त के सम्बन्ध में है । यद्यपि हममें से अधिकांश लोगों का किसी ऐसे उच्च अनुभव नहीं प्राप्त है कि भी हमने द्वारा निर्मित काया में हम इसकी गम्भीरतम प्रतिबन्धनियाँ मुक्त करने हैं तथा इसकी प्राप्ति का अनुभव कर सक्त हैं । मैं शीघ्र के दायरा करि ‘काबा नहीं’, जिनकी मृत्यु सन् १०५० ई० में हुई, द्वारा निर्मित एक तारकी गीत के एक अर्थ का अनुवाद कर रहा हूँ ।

‘हाट में और मट में मैंने केवल परमात्मा को देखा ।

पत पर, पाटी में मैंने केवल परमात्मा का देखा ॥

कल में पट्टा उस अपनी इगल में देगा ।

स्नेह में, सीमा में मैंने केवल परमात्मा का देखा ॥

प्रापना और मर में, स्तुति एवं चिन्तन में ।

सिम्बर के कम में मैंने केवल परमात्मा का देखा ॥

न रह और न आमा, न पटना और न पदार्थ ।

न गुण और न कारण, मैंने केवल परमात्मा को देखा ॥

अस्ती अस्ति मोल, मैंने उसका मुख के प्रकाश में अपने चारों ओर देखा ।

और यमें मरी अस्ति यही लोभ पायी कि मैंने केवल परमात्मा को देखा ॥

मानवजी की भाँति मैं उसकी आश्र में पिघल रहा था
बाहर की ओर लम्पटा लपटों में मैंने केवल परमात्मा का देखा ॥

अपनी आँखों से स्वयं को मैंने बहुत स्पष्ट रूप से देखा,
किन्तु जब मैंने परमात्मा की आँखों से देखा तो मैंने केवल परमात्मा
को देखा ॥

मैं रहस्य में मिल गया और विलीन हो गया
और देवों कि मुझे अनन्त जीवन मिल गया, क्योंकि मैंने केवल परमात्मा
का देखा ॥

सम्पूर्ण सूरीमत इस विश्वास पर आधारित है कि जब व्यक्तिगत रूप
का लोप हो जाता है तब विश्वात्मा की प्राप्ति होती है। इसे धार्मिक भाषा
में वाँ कह सकते हैं कि मात्र आह्लाद (आविष्टावस्था) ही वह साधन
प्रस्तुत करता है जिसके द्वारा आत्मा परमात्मा से सीधा सम्बन्ध स्थापित
करके उससे मिल सकती है। इत्याग, आत्मशुद्धि, प्रेम, ज्ञान, संन्यास
आदि सूरीमत की सभी प्रमुख विचारधारणें इसी प्रधान सिद्धान्त से
उत्पन्न हुई हैं।

सूरियों द्वारा साधारणतः प्रयुक्त लाक्षणिक शब्दों में आह्लाद के
न्यूनाधिक व्युत्पत्तियों का शब्द यह है—‘अना’ (मिट जाना), ‘यज्ञ’
(अनुमन करना), ‘यमा’ (भय), ‘जौक’ (रुचि) ‘शिब’ (मदिरपान),
‘गैबत’ (आन विमृति), ‘अन्नकत’ (आनयण), ‘कुज’ (उन्माद) तथा
‘हाल’ (आवग)। सूत्रियों के मूलग्रन्थों में दी गई इन शब्दों की तथा
इनसे मिलते जुलते बहुत से अन्य शब्दों की परिभाषाओं की विस्तृत विवे-
चना करना विशेष शिष्टाचार न होकर केवल बचाने वाला ही होगा।
जब आह्लाद का यगुन “एक दैवी रहस्य जिस परमात्मा अपने धर्मानु-
यायियों पर, जो उस निष्पक्षता की दृष्टि से अद्वैत हैं, प्रकट करता
है” के रूप में अथवा “एक स्थिति जिससे जो प्रमत्ता से उत्पन्न होकर
आत्मा की भूमि में प्रवेश करती है” के रूप में विज्ञा जाता है, तब हम
आह्लाद की प्रकृति बहुत उचित ढंग से नहीं समझ सकते। यगुन पारि

अथ कि पहली स्थिति 'ग्रह' के नैतिक विवास की ओर संकेत करती है, दूसरी स्थिति 'ग्रह' की सचेतनता और धौदिक विवास की ओर संकेत करती है। इसाद गृहस्थवाणियों द्वारा ग्रहीत वर्गीकरण का प्रयोग करते हुए हम पहली स्थिति का 'शुद्धि पूरा जीवन' का अन्त तथा दूसरी को 'प्रकाश प्राप्त जीवन' का लक्ष्य समझ सकते हैं। तीसरी और अन्तिम स्थिति 'चिन्तनशील जीवन' का उच्चतम स्तर है।

यद्यपि सामान्य रूप से नहीं, फिर भी प्रायः 'पूजा' की स्थिति में इन्द्रियजनित ज्ञान का लोप हो जाता है। तीसरी शताब्दी के एक पण्डित भूषी सरी अल-सङ्गती का मत है कि इस स्थिति का प्राप्त किसी व्यक्ति के चेहरे पर यदि तलवार से प्रहार किया जाय तो भी उसको चोट की प्रतीति नहीं होगी। अयुल्तैर अल-अङ्गता के पैर में एक नाखून हो गया था। चिन्तित्सफे ने भोक्त किया कि उसका पैर काटकर अलग कर देना चाहिए किन्तु वह इसका लिए अनुमति नहीं देता था। उसके शिष्यों ने कहा, "अग विच्छेद उस समय कीजिए जसाकि वह प्रार्थना कर रहा हो क्योंकि उस समय वह अचेत रहता है।" चिन्तित्सफे ने उनकी सलाह के अनुसार कार्य किया और जब अयुल्तैर ने अपनी प्रार्थना समाप्त की तो उसने देखा कि उसका अग विच्छेद किया जा चुका था। यह समझ पाना कठिन है कि 'पूजा' में दूर तक पहुँचा हुआ कोई व्यक्ति धार्मिक नियमों का पालन कैसे कर पाता है। यह एक ऐसी बात है जिस पर कष्ट गृहस्थवाणी बहुत बल देते हैं। यहाँ सन्तत्य के सिद्धान्त का सहारा लिया जाता है। परमात्मा को अपने प्रिय भक्तों को अपनी आज्ञाओं की अवज्ञा से बचाने की स्वयं चिन्ता रहती है। कहा जाता है कि 'शायज़ीद', 'शिराज़ी' एवं अन्य सन्त समाजों में आनन्द विमोहावस्था में उस समय तक लीन रहते हैं कि नमाज़ का समय न हो जाता। तब वे चैतन्य हो जाते और नमाज़ पढ़ने के पश्चात् पुनः आनन्द-विमोहावस्था में निमग्न हो जाते।

करते हैं तो वे साधारणतया ऐसा 'दर जाने समा' (समा के बारे में) शीर्षक वाले अध्याय में करते हैं। हुजवीरी ने अपनी पुस्तक 'यश्शुल् महजुब' के अंतिम अध्याय में इस शीर्षक के अन्तर्गत अपने और अन्य मुसलमानी सिद्धान्तों का अति सुन्दर सारांश दिया है और साथ ही साथ उन व्यक्तियों की अनेक क्यार्रें भी दी हैं जिन पर कुरान की कोई आयत, कोइ 'हानिफ' (आप्रशयाणी), कविता या शहीद मुनकर आह्लाद का दौरा पड़ गया था। इस प्रसंग जाग्रत हुई भावना से बहूतों की मृत्यु भी हो गयी। विवरण देने के लिए मैं यह भी जाह्न देना चाहता हूँ कि एक प्रसिद्ध सहस्त्रादी निरवास के अनुसार ईश्वर ने सृष्टि की प्रत्येक वस्तु को अपनी ही भाषा में परमात्मा की स्तुति करने के लिए अनुप्राणित किया है, ताकि विश्व की समस्त रचनाएँ एक वृक्ष सामूहिक भजन का रूप धारण कर लें, जिसका दाग परमात्मा स्वयं को प्रगणित करता है। परिणामस्वरूप वे लाग, जिनके हृदयों की गोलक उठन आर्पायन इष्टि प्रदान की है, हर जगह उसकी ही वाणी सुनते हैं और 'मुअमिन' का लवणयुक्त 'अज्ञान' कल्मा या कथ पर मशक लटकाए गली में जात हुए सड़का (भिरती) की आवाज़, या वायु का शोर या भैंस का मिमियाना या चिकिया की बहचहाहट सुन कर ही उन पर आह्लाद का दौरा पड़ जाता है।

पैगामोरस और अकलानून ने एक दूसरा सिद्धान्त, जिसका और गरीबविगण वरुषा सकेत करते हैं, पताया है कि सजीव आत्मा में इस जानन से पूरा अवाग आत्मा के परमात्मा से विनग होने से पूरा मुनी गर स्वीय गान की स्मृति जाग्रत करता है। इसी भाँति कलाहुरीन स्त्री ने भी कहा है —

"प्रहा पर परिमा करन हुए गान

यही है जा मनुज वीणा और धनि व साथ गाते हैं।

आदम व यशत्र होने व नात

यद्यपि जल और गन्ध ने अपना पद हम पर डाल दिया है,

तथापि इन स्वर्गीय गानों की घुँघली स्मृति हम में है ।

किन्तु जब हम साधारिकता के भारी पदों में इस प्रकार लिपटे हैं,
तो नाचते हुए यह मण्डल की धनियाँ हम तक कैसे पहुँच
सकती हैं ?”

‘समा’ के औपचारिक अभ्यास का सन्धियों में शीघ्र ही प्रचार हो
गया । इसने एक तीन मतभेद को जन्म दिया । कुछ लोग इस नियमा-
नुमोदित और प्रशंसा के योग्य मानते हैं और कुछ इस घृणित नयी
पद्धति और वासनाओं के प्रति उत्तेजना मानकर इसकी निन्दा करते
हैं । निम्न देशवासी ‘भूतल नून’ के कथन में ‘यत्’ मध्यम विचार की
ही ‘दुर्जयिरी’ में ग्रहण किया है —

“सद्गीत एक स्वर्गीय प्रभाव है जो हृदय को ईश्वर की गान करने
के लिए जाग्रत करता है । जो इस आध्यात्मिकता के साथ सुनत है वे
परमाना को प्राप्त होते हैं और जो इस विन्यासविधि से सुनत हैं वे अधर्म
में प्रवृत्त होते हैं ।”

अन्त में यह घोषणा करता है कि भवण न तो अच्छा है और न
सुरा और इसका निश्चय इस परीणामों द्वारा करना चाहिये ।

“जब कोई सच्चा निम्न मन्दिरालय में जाता है तो मन्दिरालय ही
उसकी गुफा बन जाता है किन्तु जब कोई शरापी निम्न गुफा में जाता
है तो वही उसका मन्दिरालय बन जाती है ।”

यह व्यक्ति, जिसका हृदय परमाना के ध्यान में लान रहता है,
सद्गीत वादों का सुनकर भ्रष्ट नहीं हो सकता । नृत्य के विषय में भी
ऐसा ही है ।

“जब हृदय पकड़ता है और आनन्दावरण तीव्र हो जाती है तथा
आकाश की व्याकुलता प्रकट हो जाती है और रुद्र रूप नष्ट हो जाते
हैं तो यह नृत्य या निमासप्रियता न होकर आत्मा का विगमन हो
जाता है ।”

जो भी हो, दुःखवीरी ने 'समा' में प्रवृत्त होने वालों के लिये कई पूर्वनिर्धारित नियम बतलाए हैं और वह स्वीकार करता है कि दरवेशों द्वारा सर्वसाधारण के बीच पेश किये गए सद्गीत के कार्यक्रम बहुत ही अच्छाचार फैलाने वाले हैं। उसका विचार है कि नवसिलियों को उनमें उपरिष्ठ होने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। आधुनिक काल में भी इन आवेग सम्पन्नी दृष्टियों का बहुधा वर्णन प्रत्यक्षदर्शियों द्वारा किया गया है। अथ मैं जामि द्वारा लिखित 'सन्तों की जीवनियाँ' से एक इसी प्रकार के कार्यक्रम के, जो लगभग सान सौ वर्ष पूर्व रचित हुआ था, वर्णन का अनुवाद रखता —

'एक हल्की दरवेश था। उसका नाम जङ्गी बरगिर्दी था। उसने आध्यात्मिकता का इतना ऊँचा दर्जा प्राप्त कर लिया था कि रहस्यवादियों का नृत्य उस समय तक प्रारम्भ नहीं किया जा सकता था जब तक कि वह बाहर निकल कर उसमें सम्मिलित न हो जाता। एक दिन 'समा' होने समय उस पर आह्लाद का दौरा पड़ा और हवा में ऊँचा उठकर वह एक ऊँची मेहराब पर जो नृत्य करने वालों के ऊपर थी, बैठ गया। उतरते समय वह बगदाद का शेख मजदुद्दीन के ऊपर बूढ़ पड़ा और शक की शक्ति अपने पैरों में फैला ली। यद्यपि शेख बहुत दुबला-पतला आदमी था और हल्का बहुत लम्बा-तगड़ा था, फिर भी वह नृत्य में बराबर चक्कर काटता रहा। नृत्य समाप्त होने पर मजदुद्दीन ने कहा, 'मुझे यह पता नहीं चला कि मरी गर्दन पर एक हप्पी था या एक गोरैया थी।' शेख के बच से उठने पर हप्पी ने उसके गाल में इतने जोर से घाट लगाया कि भाव का निशान उसके बाद हमेशा दिगार्दै पड़ता रहा। मजदुद्दीन प्रायः कहा करता था कि क्यामत का जिन वह किसी वस्तु पर गाय नहीं करेगा, सिखाव इसका कि उसके चेहरे पर एक हप्पी का दागों का बिहूँ अभिहित है।'

इस्लाम के इन सद्गी अनुयायियों का आह्लादमय जीवन के किसी सन्त विप्रण में कुछ भ्रष्ट और अधम तन्त्र अवश्य ही दिखाए पड़ेंगे—

मारी विद्वतियों का तो कहना ही नहीं। उनका अस्तित्व को दिमान
 थापवा उनका महत्व को कम करने से काइ लाभ नहीं है। यदि, जैसा कि
 अलालुदीन रुमी ने कहा है, “मनुष्य शराब और दवाआ की भत्सना
 इसीलिए सहन करता है कि ये कुछ ज़णों के लिए आनन्द चेतना से
 बच सकें, क्योंकि सभी जानते हैं कि यह जीवन एक जाल है और
 स्वल्पपूर्ण मृति और विचार नरक के समान हैं” तो हमें यह स्वीकार
 करना चाहिए कि आध्यात्मिक उन्माद के आनन्द सदा उन्मृष्ट नहीं
 होते और मानव प्रकृति की यह चाल होती है कि वह उन लोगों से, जो
 उसका परित्याग करते हैं, अपना बदला अनुरूप लेती है।

तृतीय अध्याय

‘मारिफत’—ज्ञान

✓ सूफी लोग आध्यात्मिक सन्देश के तीन मुख्य अङ्ग मानते हैं वे हैं ‘क़ल्ल’ (हृदय), जो परमात्मा का जानता है, ‘रूह’ (जीव), जो परमात्मा से प्रेम करता है, और ‘सिर’ (अन्तरात्मा) जो परमात्मा का चिन्तन करता है। यदि हम इन शब्दों की तथा इनके एक दूसरे से सम्बन्ध की व्याख्या करना शुरू करें तो हम अथाह गहराइयों में पहुँच जाएँगे। तीनों में से केवल प्रथम के बारे में ही कुछ कह देना पर्याप्त होगा। ‘क़ल्ल’ यानि किसी रहस्यपूर्ण दृग् से शारीरिक हृदय से सम्बद्ध है किन्तु भी यह मांस और रक्त की बनी हुई कोई उस्तु नहीं है। अंग्रेजी ‘हाट’ के विरुद्ध इसकी प्रकृति भावनापूर्ण होने की अपेक्षा बौद्धिक अधिक है, किन्तु जहाँ बुद्धि परमात्मा का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने में असमर्थ है, वहाँ ‘क़ल्ल’ सभी यत्नश्रमों का सारतत्व समझने की क्षमता रखता है और जब यह भ्रष्ट और ज्ञान से प्रकाशवान् हो जाता है तो देनी बुद्धि का समग्र रूप इसमें प्रतिबिम्बित हो उठता है। इसीलिए पैगम्बर ने कहा है “मैं (इसरर) अपने बनाये हुए कृष्ण और स्वर्ण में नहीं समाता परन्तु भ्रष्टावान् सेवक के हृदय में मैं समा जाता हूँ।”^१ जहाँ भी हा, वह बाध बहुत कम लोगों को प्राप्त होता है। सामान्यतः हृदय आन्ध्राण्डवि अवरामा में रहता है। यह पाप से कलुषित, इन्द्रियसुग्न के विचारों तथा कल्पनाओं से मलिन और विवेक तथा आवेग के मध्य श्रद्धालाभ्या में रहता है। यह वह मुद्बुद्ध है जिस पर परमात्मा और

१—जो यमग्नी अरदी बला मयाठ पल यमग्नी फलकुल अम्बिल मुमिन। —इनाम

शैतान की सनायें विजय के लिये सघप करती हैं। एक द्वार से हृदय परमात्मा का निकटतम ज्ञान प्राप्त करता है तो दूसरे से इन्द्रियों के माया जाल में फँसता है। जलालुद्दीन रूमी का कथन है “एक सगर इधर है और एक सगर उधर और मैं दोनों के चौखट पर बैठा हूँ।” अतएव सम्माय रूप से मनुष्य पशुआ से भी निम्न और परितो से भी उच्चगति पर होता है।

“मनुष्य के अद्भुत त्वमीर में परित्त और पशु का सम्मिभण है इनकी इच्छा पर वह इनसे निम्नतर होता है, किन्तु दिपय की इच्छा करने पर वह परित्त से भी आगे बढ़ जाता है।”

मनुष्य पशुओं से भी हीन इसलिए होत हैं कि उनमें उधान के माय्य बनाने वाले ज्ञान की कमी होता है और परित्त से भी भेष्ठ इसलिए होत हैं कि वे वासना में बह नहीं जात। इसका फलस्वरूप उनका पतन नहीं होने पाता।

मनुष्य परमात्मा का कस जाने ? इन्द्रियाँ द्वारा नहीं क्योंकि परमात्मा निराकार है। बुद्धि द्वारा भी नहीं, क्योंकि वह विचारणीय है। तत्काल परिमिति से आग नहीं जा सकता दशन शास्त्र की इन्द्रि दोहरी होती है और पुस्तकें द्वारा प्राप्त ज्ञान अहंकार का पापण करता है और उय (परमात्मा) के विचार का माय्य शब्दों के पादलों से टक देता है। जलालुद्दीन रूमी परित्त्यादी धर्मशास्त्रियों को सम्बोधित करत हुए भक्तनायक पृच्छत है —

‘ क्या तुम कोई नाम जानते हो जिसमें किसी वस्तु का बोध न हो ?
क्या तुमने कभी गु, ला, य, अक्षरों से गुलाब सोझा है ?

तुम परमात्मा के नाम का कथन नाम कहते हो, जाया एव नाम की वास्तविकता की खोज करो !

चन्द्रमा को आकाश में दूने, जल में नहीं।

यदि तुम्हारी इच्छा निरे नामों और अक्षरों से ऊपर उठने की है, तो स्वयं को एक ही ऊटके में अपने अहं से स्वतंत्र कर लो। अहं में आरोपित सभी गुणों से शुद्ध हो जाओ, ताकि तुम स्वयं अपना दिव्य स्वत्व देख सको।

हाँ, पैगम्बर द्वारा दिया गया ज्ञान तुम अपने हृदय में बिना किसी पुस्तक, शिक्षक या उपदेशक के देखो।” यह ज्ञान प्रकाश प्राप्ति, इल्हाम (प्रकटीकरण) और दैवी प्रेरणा से प्राप्त होता है।

सूफ़ी कहता है, ‘तुम अपने हृदय में देखो, क्योंकि ईश्वर का रास्ता तुम्हारे भीतर ही है।’ जो सचमुच अपने को जानता है वही परमात्मा पर जानता है, क्योंकि हृदय एक ऐसा दर्पण है जिसमें प्रत्येक ईश्वरीय गुण प्रतिबिम्बित होता है। जैसे इस्पात का बना हुआ दर्पण मोर्चा लग जाने से प्रतिबिम्बित करने की अपनी शक्ति खो बैठता है, ठीक उसी भाँति आन्तरिक अभ्यात्मेन्द्रिय, जिसे सूफ़ी लोग हृदय बोलते हैं, स्वर्गीय सौन्दर्य के प्रति अंधी हो जाती है और यह दर्शा उस समय तक बनी रहती है जब तक कि दृश्य जगत की अहं से सम्बन्धित क्लृप्त बाधाएँ अपनी सभी वासनामय भ्रष्टताओं सहित पूर्ण रूप से साफ़ नहीं हो जाती। यह सफ़ाई फल परमात्मा ही प्रमाणपूर्ण रूप से कर सनता है, यद्यपि इसमें मनुष्य के आन्तरिक सहयोग की भी कुछ आवश्यकता पड़ती है। “अब कोई हमारे लिए प्रयत्न करेगा, हम उसे अपने यहाँ का मान दिलाते चलेंगे।” यह वाय, जिसे कोई अपने द्वारा किया हुआ मानता है, भूटा और ध्वस्त होता है। शेष प्रातः रहस्यवादी परमात्मा को ही प्रत्येक कार्य का वास्तविक कर्ता मानते हैं, अतएव वे अपने कार्यों के लिए कोई यश नहीं लेते और न उनका लिए पारितोषिक पाने का ही इच्छा करते हैं।

जब कि साधारण ज्ञान को 'इल्म' शब्द से निर्दिष्ट किया जाता है, परम्परागी ज्ञान को, जो मूर्खियों की अपनी विशेषता है 'मारिऊत' अथवा 'इरफ़ान' कहा जाता है। जैसा कि मैंने पूर्वगामी अनुच्छेदों में बताया है 'मारिऊत' मूलतः 'इल्म' से भिन्न है और इसका अनुवाद करने के लिए किसी भिन्न शब्द का प्रयोग करना चाहिए। एक उदाहरण परंपरागी शब्दों के लिए हमें अधिक दूर तक नहीं ढूँढना पड़ेगा। मुनाज़ि प्रत्यय का 'आमिस' अर्थात् प्रकृतीकरण या मरिप्यन्शी हस्ति पर आधारित परमात्मा का प्रत्यक्ष ज्ञान ही मूर्खियों की 'मारिऊत' है। यह किसी मानसिक प्रक्रिया का फल नहीं है, बल्कि यह पूर्ण रूप से परमाना की इच्छा और कृपा पर निर्भर है और यह इस करने वाले से वरदान रूप में उन लोगों का प्रदान करता है जिनका उसने इस ग्रहण करने की योग्यता का साथ ग्यन किया है। यह इशरीर कृपा का एक प्रमाण है जो हृदय में नमक उठता है और जिससे चक्काचर करने वाली किर्णों में मनुष्य की प्रत्यक्ष मानसिक शक्ति नष्ट हो जाता है। "वा परमाना को ज्ञान लेता है वह मूक हो जाता है।"

निश्चयी ने, जो एक अज्ञात दरवेश या और जिसका मृदु मिय देश में दसरी शताब्दी के उत्तरार्ध में हुए विप्लवशील गस्तराज पर निरुद्ध करने महत्वपूर्ण समय में 'आमिस (ज्ञान) और विध्वंसक काम में स्थिति सम्बन्ध की विवेचना की है। उसकी रचना, जिसमें 'इल्हामी' की एक माला दी हुई है जिनमें परमाना केवल का साक्षात्कार करने ज्ञान सम्बन्धी सिद्धान्त के बारे में उपदेश देता है अति दृढ़ मार्ग में जारी हुई है और साथ में दिय गये भाष्य के बिना इसकी समझना कठिन है। किन्तु इस अस्वाभाव में दिय गये उद्धरणों से प्रो. मूरिनन की मूल व्याख्या के रूप में इसका मूल्य पर्याप्त रूप से प्रकट हो जायगा।

निश्चयी के कथनानुसार परमात्मा का सोचने बाने तीन प्रकार के होते हैं — प्रथम वे उदात्त हैं जिन्हें परमात्मा अपना ज्ञान पारिवर्तित रूप प्रदान करता है। अर्थात् वे परमात्मा की उदात्तता स्वयं अध्यात्म

स्वप्न और चमत्कार सदृश कोई आध्यात्मिक प्रतिफल प्राप्त करने की आशा से करते हैं। दूसरे वे दार्शनिक और पाण्डित्यवाद के धर्मशास्त्री हैं जिन्हें परमात्मा अपना ज्ञान ऐश्वर्य के द्वारा कराता है। अर्थात् वे ऐश्वर्यवान् परमात्मा को, जिसकी वे खोज करते हैं, नहीं पाते। इसलिए वे यह दावा करते हैं कि परमात्मा का स्वत्व अज्ञेय है। वे कहते हैं "हम जानते हैं कि हम उसे नहीं जानते, और यही हमारा ज्ञान है।" तीसरे वे जानी हैं जिन्हें परमात्मा अपना ज्ञान आकाश द्वारा कराता है। अर्थात् उन पर ऐसे ज्ञान-द का अधिकार और नियन्त्रण होता है जो उन्हें सर्वात्मक अस्तित्व की चेतना से रहित कर देता है।

निम्नजाली ज्ञानी को उदासना के कंकल ऊर्ध्वी कावों को करने की आशा देता है जो उसके परमात्मा के प्रतिमासित दृश्य से मेल खाते हों, यद्यपि ऐसा करने में उसे अवश्य ही सामान्य लोगों के लिए बनाये गये धार्मिक नियमों की अवहेलना करनी पड़गी। उसकी आन्तरिक भावना को ही यह निराश करना चाहिए कि धर्म के वाच्य रूप उसके लिए किन्तु सीमा तक अज्ञेय हैं।

"परमात्मा ने मुझसे कहा कि तू मुझसे यह कहकर पूछ, 'हे प्रभु, मैं किस प्रकार तुमसे बिपदा रहूँ ताकि मेरे निष्पत्य (क्यामत) के दिन तू मुझ दण्ड न दे और मेरी ओर से अपना मुँह मोड़ न ले।' तब मैं तुम्हें यह कहकर उत्तर दूँगा, 'अपने वाच्य सिद्धान्तों और मुना (पिगमर द्वारा बनाये गये नियम) के याज्ञाचार्य का वाक्य दे और अपनी आन्तरिक भावना को उस ज्ञान के साथ खलम कर दे जा मैंने तुम्हें प्रदान किया है। तू यह जान ले कि जब मैंने तुम्हें अपना बोध कराया है तो मैं मुना की वाई घात तुमसे स्वीकार नहीं करूँगा यद्यपि उस बात के जो मेरे द्वारा तुम्हें प्राप्त हुआ है, क्योंकि तू उन लोगों में से है जिनमें मैं बालना हूँ नू मेरी वाणी सुनता है और जानता है कि तू मुझे मुन खा है और तू देखता है कि सभी वस्तुओं का उद्गम भ ही है।"

माध्यकार का कहना है कि मुझा, अभिप्राय में सामान्य होने के कारण स्वयं का खोज करने वाले और परमात्मा की ग्राह करने वाले व्यक्तियों के बीच कोई अन्तर नहीं करता, बरन सामान्य में वह टीका उठना ही देता है। जितनी प्रत्येक "पक्ति" का आनन्दप्रकृति होती है। प्रत्येक पक्ति के लिए मुख्य रूप से अनुचित भाग की विवेचना या तो इतर द्वारा हृदय का प्रत्यक्ष ज्ञान से होती है अथवा किसी आध्यात्मिक गुरु के बताए हुए मार्ग से।

‘और उसने मुझसे कहा, ‘मरा बापरी इल्हाम (प्रकृति कारण) मेरे गुप्त (आन्तरिक) इल्हाम से मल नहीं खाता।’

इसका तात्पर्य यह है कि यदि जानी का आन्तरिक अनुभव धार्मिक नियमों के विपरीत वह तो भी उस प्रकृति और उद्दिष्ट नहीं जाना चाहिए। यह निरोध कबल ऊपर होता है। घन ऊपर होता है। घन मनुष्यों के सामान्य समूह का, जिनके मन, तब, परमरा आदि न उन्हें आध्यात्मिक पर रंग है, सम्बोधित करता है, जब कि ज्ञान उन चुन हुए मनुष्यों के लिए है जिनके शरीर और आत्मा अनन्त प्रकृति में स्नान कर चुके हैं। घन प्रत्येक वस्तु का अनन्त के दृष्टिकोण से दृश्य है, जब कि ज्ञान सबव्यापी एकरूप (परमात्मा) को ही मानता है। इसी कारण एक ही समय घन में अष्टा किन्तु ज्ञान में बुरा माना जाता है। यह सत्य सच में इस प्रकार कहा जाता है —

“शुद्ध आचरण वालों के अष्टा का परमात्मा के द्विज मनुष्यों के लिए बुरे कार्य हैं।”

यद्यपि भक्ति के कार्य ज्ञान के साथ बनल नहीं हैं, ता भी जो कार्य करने में उनका तनिक भी सम्बन्ध करता है वह जानी नहीं है। निम्न निम्नित दृष्टान्त का यहाँ मुख्य विषय है। निम्नकारी ने जितना स्पष्ट रूप से यहाँ लिखा है, शायद ही कहा जायता है। तमारी मेरा विचार है कि मेरे पापों में से वह भी पापों में दो गुरु व्यापारों का वित्तुल निरूपण नहीं पादगा।

समुद्र का इल्हाम

परमात्मा ने मुझे आशा दी कि समुद्र को देखो । मने जहाजों को डूबते और तम्बों को तैरते हुए देखा । तत्पश्चात् तम्बे भी डूब गए ।”

[समुद्र से तत्पर्य उन आश्वासनिक अनुभवा से है जिनसे हाकर रहस्यवादी परमात्मा की ओर यात्रा करता है । यहाँ प्रश्न यह है कि यह धार्मिक नियमों की प्रमुखता दें अथवा (परमात्मा के प्राप्त) उदासीन प्रेम को । यहाँ उस चेतावनी दी गई है कि यह अपने सत्कार्यों पर, जो डूबते हुए जहाजों से अधिक अच्छे नहीं हैं और कभी भी उसे तट पर मुश्किल दशा में नहीं पहुँचायेंगे भरोसा न करें । यदि उस परमात्मा को प्राप्त करना है तो कर्म परमात्मा पर ही भरोसा रखना चाहिए । यदि वह परमात्मा पर पूरा रूप से भरोसा नहीं करता, बल्कि किसी अन्य वस्तु पर तनिय भी भरोसा करता है तो उसकी दशा तम्ब से बिपदे हुए व्यक्ति से समान है । यद्यपि परमात्मा पर उसका भरोसा पहले की अपेक्षा अधिक है, फिर भी यह पूरा नहीं है ।]

‘और उसने मुझसे कहा, वे लोग जो समुद्र यात्रा करने हैं सुरक्षित नहीं रहें ।”

[समुद्रयात्री जहाज को समुद्र पार करने के साधन-रूप में काम में लाता है, अतएव वह प्रधान कारण (परमात्मा) पर भरोसा न करके गौण कारणों पर भरोसा करता है ।]

“और उसने मुझसे कहा, ‘आ लोग समुद्र यात्रा करने के बजाय स्वयं अपने को समुद्र में डाल देते हैं ये जोखिम उठाते हैं ।”

[समस्त गौण कारणों का परित्याग करना समुद्र में कूद पड़ने के समान है । ऐसा साहस करने वाला खरबगदी के कारणों से छत्रों में पड़ जाता है । यह सोच सफ़त है कि त्याग के कारणों को आरम्भ और पूर्ण करने वाला यह स्वयं ही है, न कि परमात्मा और जो कोई किसी वस्तु का त्याग अर्ह के साथ करता है यह उस भी बुरी अवस्था में होता है ।

जिसमें परित्याग न करने पर होता । अमरा वह गौण कारणाँ को अर्थात् अच्छे कर्मों, स्वर्ग की आशा आदि को परमात्मा के लिए नहीं करने निषेध उदासीनता तथा आध्यात्मिक भावना के अभाव के कारण त्यागता है ।]

“और उसने मुझसे कहा, ‘जो लोग समुद्रयात्रा करते हैं और जातिम नहीं उठाते वे नष्ट ॥ जायेंगे’ ।”

[ऊपर निर्दिष्ट किए हुए खतरों के होते हुए भी वह या तो परमात्मा को अपना धर्म लक्ष्य बना ले या असफलता का धरण करे ।]

“और उसने मुझसे कहा, ‘जोतिम उगाने से मोक्ष का केवल एक अश मात्र प्राप्त होता है ।”

[मोक्ष का केवल एक अश इसलिए कि पूर्ण नि स्वाध माय अभी तक नहीं प्राप्त हुआ है । पूर्ण मोक्ष सभी गौण कारणाँ और सारे दृश्य जगत का परमात्मा के प्रतिमासिद्ध दृश्य से उत्पन्न आनन्द द्वारा मिटा देने से उपलब्ध होता है । किन्तु वह ज्ञान है और प्रत्युत ‘इच्छान’ निम्न भेणी के रहस्यवादियों का समर्थित करके कहा गया है । शरीर कोई भी जातिम नहीं उगता क्योंकि उसका पास जाने की कोई वस्तु नहीं होती ।]

“और लहर आर और नीचे पड़े हुए लोगों का उठाकर किनारे पर पटक दिया ।”

[लहरों के नीचे पड़े हुए लोग वे हैं जो जहाजों में समुद्रयात्रा करते ॥ और परिणाम स्वरूप जहाज के ध्वंस हो जाने पर दुःख उठाने हैं । उनका गौण कारणाँ पर मर्यादा करना ॥ उन्हें किनारे पर ला पटकता है । अर्थात् उन्हें पुन इस दृश्य जगत में भारस लाता है, जहाँ वे परमात्मा के दरशन से वञ्चित रह जाते हैं ।]

“और उसने मुझसे कहा, ‘समुद्र का ऊपरी तल एक प्रकाश विराट है, जो पहुँच से बाहर है’ ।”

[जो कोई उपासना के बाह्याचारों पर इसलिए निर्भर रहता है कि
 उसे परमात्मा तक ले जायेंगे वह दलदल में उत्पन्न होने वाले प्रकाश
 के पीछे दौड़ता है ।]

“और इस समुद्र का तल अमेव अचकार है ।”
 [विचेयात्मक धर्म को पूर्ण रूप से त्याग देना मार्गहीन भूल मुलैया
 में मटकन के समान है ।]

“और दोनों के मध्य मछलियाँ हैं जिनसे भय रहता है ।”
 [यहाँ शुद्ध बाह्याचारवाद और शुद्ध अन्तस्संस्कार के बीच के
 मध्यम मार्ग की ओर संकेत किया जा रहा है । मछलियों से सात्विक
 इसमें आने वाली शकाओं तथा बाधाओं से है ।]

“तु समुद्र में यात्रा न कर कहीं ऐसा न हो कि मैं तुम्हें वाहन द्वारा
 ही आन्ध्रदित कर दूँ ।”

[वाहन का अभिप्राय जहाज से, अर्थात् परमात्मा को छोड़ कर
 अन्य किसी वस्तु पर भरोसा करने से, है ।]

“और तू अपने को समुद्र में भी मत डाल दे कहीं ऐसा न हो कि
 मैं तुम्हें तेरे स्वयं को डाल देने द्वारा ही आन्ध्रदित कर दूँ ।”

[जो कोई किसी कार्य को स्वयं अपने द्वारा किया हुआ समझता
 है और उसके वस्तुत्व का आरोप स्वयं में करता है वह परमात्मा से
 बहुत दूर रहता है ।]

“और उसने मुझसे कहा, ‘समुद्र में सीमाएँ भी हैं, उनमें से कोई
 तुम्हें पार कर सकती है ?’

[‘सीमाएँ’ आध्यात्मिक अनुभव की विभिन्न श्रेणियाँ हैं । रहस्य
 का इनमें से किसी पर भी भरोसा नहीं करना चाहिये, क्योंकि वे
 अपूर्ण हैं ।]

“और उसने मुझसे कहा, ‘अगर तू अपने को समुद्र को समर्पित
 देता है और उसमें डूब जाता है, तो तू उसमें निवास करने वाले का
 शिकार हो जायगा ।’”

[यदि रहस्यवादी गौण कारणों पर भरोसा करता है अथवा स्वेच्छा से उनका परित्याग करता है तो यह भटक जायगा ।]

“और उसने मुझसे कहा, ‘यदि मैं तुम्हें अपने अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु की ओर जाने को कहता हूँ तो मैं तुम्हें धोखा देता हूँ’ ।”

[यदि रहस्यवादी की आन्तरिक वाणी उसे परमात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु की ओर जाने का कहती है तो वह उस धोखा देती है ।]

“और उसने मुझसे कहा, ‘यदि तू मुझको छोड़कर अन्य किसी के लिये जान देता है तो तू उसी का होकर रहेगा जिसके लिये तूने जान दी है’ ।”

“और उसने मुझसे कहा ‘यह साफ उलझ है जिसे मैंने इस विमुक्त कर दिया है तथा जिससे मैंने इस विमुक्त कर दिया है । परन्तु उसका है जिसकी ओर मैं उस लाता हूँ तथा जिस में अपनी आर लाता हूँ’ ।”

[इस कथन का तात्पर्य यह है कि अनन्त आनन्द उन लोगों के माध्यम की वस्तु है जिनके हृदय इस ससार से विमुक्त हो चुके हैं तथा जिनके अधिष्ठाता में कोई भी सांसारिक वस्तु नहीं है । वे ही इस ससार के वास्तविक आनन्द उन्मत्त हैं क्योंकि यह उन्हें परमात्मा से विच्छिन्न नहीं करता । इसी प्रकार से परलाभ के लिये अधिष्ठाता से साग है या नसरी हन्धा ही नहीं करत, क्योंकि उनका सामाजिक लक्ष्य वस्तु परमात्मा के चिन्तन करना है, न कि स्वयं की हन्धा करना ।]

अनी विषयानुक्त धर्म में भी स्वयं का लक्ष्य देख लेता है किन्तु उद्योग ज्ञान धर्म अथवा किसी प्रकार के मान्यता ज्ञान से नहीं प्राप्त होता । इसका समुचित सम्बन्ध सभी गुणों से होता है, जिनका ज्ञान परमानन्द स्वयं अपने उन सन्तों पर प्रकट करता है या उलझ चिन्तन करत हैं । जिस देशवासी जून मून ने जो अपने रहस्यवादी सिद्धान्तों के मुस्लिम ब्रह्मविद्या का जनक माना जाता है, कहा है कि ज्ञान।

नहीं रहते हैं और न अपने द्वारा जीवित ही रहते हैं, बल्कि वे वहाँ तक जीवित रहने हैं परमात्मा के द्वारा ही जीवित रहते हैं ।

“वे जैसे परमात्मा उन्हें चलाता है, वैसे ही बनते हैं, उनके शब्द परमात्मा के हा शब्द हैं जो उनकी बिद्धा से प्रस्कृति होते हैं तथा उनकी दृष्टि परमात्मा की ही दृष्टि है, जो उनकी आँखों में समा गई है ।”

ज्ञानी परमात्मा के गुणों का चिन्तन करता है, न कि उसके स्वत्व का, क्योंकि ज्ञान में भी द्वैत भावना कुछ अंश में शेष रह जाती है । इसका लोभ केवल ‘जना अल जना’ में अर्थात् अविभक्त परमेश्वर में मूल्यरूप से विलीन हो जाने में होता है । परमात्मा पर मुख्य गुण एकत्व है और देवी एकत्व ही ज्ञान मार्ग का प्रथम और अन्तिम सिद्धान्त है ।

मुसलमान और सूरी दोनों घोषित करते हैं कि परमात्मा एक है किन्तु प्रत्येक उदाहरण में इस कथन के भिन्न भिन्न अर्थ होते हैं । मुसलमान का अभिप्राय यह होता है कि परमात्मा अनेक स्वत्व, गुणों तथा कर्मों में अद्वितीय है तथा अन्य सभी जीवों से पूर्णतया भिन्न है । सूरी का अभिप्राय यह होता है कि परमात्मा ‘एक वास्तविक सत्ता’ है जो सम्पूर्ण दृश्य जगत् में व्याप्त है । जैसा कि हम देखेंगे, यह सिद्धान्त अपने स्वयं निष्कर्ष तक पहुँच गया है । यदि परमात्मा का विषय अन्य किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं है, तो मनुष्य सहित समस्त विश्व अवश्य ही परमात्मा के साथ एक रूप है चाहे यह मान लिया जाय कि इसकी उत्पत्ति परमात्मा से, बिना उसकी एकात्मता नष्ट किए, उसी प्रकार होती है, जैसे घर से शिशिर निकलती है । अथवा इस एक दर्शन मान लिया जाय, जिसमें देवी गुणों का प्रतिनिध्व पड़ता है । किन्तु निश्चय ही उस परमात्मा को, जो सब कुछ है करने का इस प्रकार प्रकट करने का कोई कारण नहीं है । ‘एक’ क्यों ‘अनेक’ में परिवर्तित हो ? सृष्टिगण इसके उत्तर में प्रसिद्ध परमराज्य कथन का उदाहरण पेश करने हुए

कहते हैं (यद्यपि एक दार्शनिक यही कहगा कि वे कठिनाई से बचत हैं) 'मैं एक गुप्त सज्जाना था और मेरी इच्छा हुई कि मैं जाना जाऊँ अतएव मैंने सृष्टि की रचना की, ताकि मैं जाना जा सकूँ।' दूसरे शब्दों में, परमात्मा अनन्त सौन्दर्य है और सौन्दर्य की यह प्रकृति है कि वह प्रेम की इच्छा करे। रहस्यवादी कवियों ने 'एक' अर्थात् परमात्मा के आत्मप्रकरण का घणन अति सुन्दर कल्पनाओं द्वारा बहुतायत से किया है। उदाहरणार्थ जामा कहता है —

“सम्पूर्ण नित्यता से प्रिय ने अपना सौन्दर्य अनदेखो के एकान्त में प्रकट किया। उसने दपण अपने समक्ष रखा और अपने सौन्दर्य का प्रदर्शन अपने ही सामने किया। वह दर्शक और दर्प दोनों ही था विषय उसका अन्य किसी आँख ने विरज का नहीं मारा। सब कुछ एक था कोई द्वैत अस्पर्शा नहीं थी 'मेरा' और 'तेरा' का भेदभाव नहीं था। आकाश का वृहत् चक्र सहस्रो भीतर आने वालों तथा बाहर जान वालों समेत एक बिन्दु मात्र में द्धिरा था। ब्रह्म से पूछ बच्चे की मूर्ति सृष्टि अनन्तित्व की निद्रा में मुग धकी थी। प्रिय की आँखों ने उसे देखा बिस्वा अन्तित्व ही न था और उसने अनन्तित्व को ही अन्तित्व माना। यद्यपि उसने अपने गुणों और विरामाओं का अग्रज ही स्वप्न में संपूर्ण रूप में देखा, तथापि उसकी यह इच्छा हुई कि वे गुण और विशेषताएँ उसका समक्ष एक दूसरे दपण में प्रदर्शित हों और उसका नित्य गुणों में वे प्रत्येक तदनुसार मिल रूप में प्रकट हों। अतएव उसने काल और स्थानरूपी हरे भरे भेतों और ससाररूपी जीवनदात्री यादिका का सूत्रन किया, ताकि प्रत्येक शास्त्र पक्षी और फल उसकी विभिन्न निपुणताओं का प्रदर्शित करे। सरा के वृक्ष ने उसका सुन्दर दीन-शूल की आर सज्जन किया। गुलाब ने उसका स्वरूपवान् भुगङ्ग का सन्देश सुनाया। जहाँ बही सौन्दर्य दिगाई पड़ा, प्रेम भी उगम साथ ही प्रकट हुआ। जहाँ सौन्दर्य गुलाबी कमला में चमका वही प्रेम ने उसकी लहरों से अपनी मराल जलाई। जहाँ सौन्दर्य ने वाली अलपों में निषात किया वही

प्रेम आया और उनकी गँडूरी में किसी हृदय को फँसा हुआ पाया। सौन्दर्य और प्रेम का सम्बन्ध देह और आत्मा की भाँति है। सौन्दर्य खान है और प्रेम मूल्यवान् पत्थर (हीरा) है। प्रारम्भ से ही वे सदैव साथ रहे हैं और कभी भी उनकी याथा एक दूसरे से विलग होकर नहीं हुईं।”

एक दूसरे ग्रन्थ में जामी ने परमात्मा और संसार के सम्बन्ध का अधिक दार्शनिक रूप से वर्णन निम्नलिखित ढंग से किया है —

“निरपेक्ष, अगोचर, अपरिमित और नानात्व से परे समझा जाने वाला वह विलक्षण सत्य ही परम सत्य (अल-हक) है। दूसरी तरफ अपने नानात्व और अनवयव में जब वह सभी गोचर वस्तुओं में अपने आपसे प्रकट करता है तो वह सम्पूर्ण रची हुई सृष्टि वही है। अतएव यह सृष्टि उस परम सत्य की दृश्यमान वास्तव्य अभिव्यक्ति है और वह परम सत्य इस दृष्टि का आम्पन्तर अदृश्य सत्य है। यह सृष्टि गोचर होने के पूर्व उसी परम सत्य के सशरीर और गोचर होने के पश्चात् उस परम सत्य का इस सृष्टि के साथ सादृश्य है।”

दृश्यमान जगत स्वतः अस्त है और इसका आकरिमक अस्तित्व केवल परम सत्ता के गुणों से, जो इसमें प्रतिबिम्बित होते हैं, प्राप्त होता है। यह इन्द्रिय गोचर जगत उस अग्नि के गोलाकार चक्र की तरह है जो एक ही अग्नि-स्फुल्लिङ्ग की चारों ओर जोर से घुमाने से बनता है।

मनुष्य सृष्टि का सर्वोत्तम प्राणी और अन्तिम कारण है। यद्यपि सृष्टि के क्रम में यह अन्तिम है, फिर भी दैवी चिन्तन की प्रक्रिया में यह सर्वप्रथम है, क्योंकि उसकी मुख्य विशेषता मौलिक बुद्धि या धार्मिक विवेक है जो केवल परमेश्वर से ही उत्पन्न होता है। यह सब वस्तुओं का ज्ञान प्रद सिद्धान्त—त्रयी सिद्धान्त, (पिता पुत्र और पवित्रात्मा) में उस दूसरे के समान है और इसका पैगम्बर मुहम्मद साहब का स्वरूप माना जाता है। इसी और दूसरे सिद्धान्तों का बीच यहाँ एक रोचक समानता दिखाई जा सकती है। इस्लाम का संस्थापक के लिये उन्हीं

अभिव्यक्तियों का प्रयोग किया जाता है जिन्हें सेण्ट जॉन, सेण्ट पाल और उनके उत्तरवर्ती धर्मशास्त्रियों ने देखा मसीह के लिए प्रयुक्त किया है। इस प्रकार मुहम्मद साहब का अल्लाह का नूर (प्रकाश) कहा जाता है। उनके लिए कहा जाता है कि उनका यजुद् (अस्तित्व) सृष्टि की रचना के पहले ही था उनका आराधना समस्त यथार्थ और सम्भव जीवन के उद्गम के रूप में की जाती है और वह ऐसे पूर्ण मनुज हैं जिनमें समस्त देवी गुणों का आनिर्भाव हुआ है। एक सूफी परम्परा तो इस पथन का आरोप भी उन्हीं में करती है, “मिसने मुझका देला उसने अल्लाह को देल लिया।” फिर भी मुस्लिम धार्मिकता में तर्क सिद्धान्त को नीचा स्थान दिया गया है, जैसा कि उस दशा में होना ही चाहिए जबकि मनुज का पूर्ण वक्तव्य यही माना जाता है कि वह परमात्मा में मिल जाय। यूरोपीय रहस्यवाद का विपरीत प्राच्य रहस्यवाद की समस्त बड़ी विशेषता यह है कि इसमें एक सब शक्तिमान सत्ता और सर्वव्यापी एषत्व के प्रति, जिसमें बयसिफता के समस्त अवशेष विलीन हो जाते हैं, पूर्ण चेतना बनी रहती है। सूफी का प्योर यह नहीं है कि वह परमात्मा के सदृश हा वाप या सत्य देवी गुणों में भाग ले, बरन् यह है कि वह अपने अनास्तविक अहता के पथन से उन्मुक्त होकर एक अनन्त सत्ता में पुन मिल जाय।

जामी प पथनाजुसार मिलन' हृदय का अङ्गना बना देने में होता है। अर्थात् हृदय को परमात्मा के सिवाय अन्य प्रत्येक वस्तु का सम्बन्ध से निमुक्त करके शुद्ध कर लेना चाहिए, यहाँ तक कि ताप प्रति इच्छा और संकल्प भी नहीं रहना चाहिए और ऐसा ही ज्ञान और ब्रह्मज्ञान के सम्बन्ध में भी करना चाहिए। रहस्यवादी का चाहिए कि वह अपनी इच्छा और संकल्प को समस्त इच्छित और संकल्पित वस्तुओं से विलग करे। उसकी विशेष दृष्टि का सामने समस्त पदार्थों को जिनके बारे में जाना या समझ का संकल्प है, शुभ हो जाना चाहिए। उसके विचारों

१—मन र आनी शब्द र अल्लाह। —हदीस

की केवल परमात्मा की ओर उभुल रहना चाहिए और उसे किसी अतिरिक्त वस्तु की चेतना नहीं रहनी चाहिए ।

जब तक वह आवेग एवं विप्लवाशक्ति के जाल में बन्दी है, उसके लिए परमात्मा से यह सम्बन्ध स्थापित रखना फठिन है । किन्तु जब उसकी अन्तरात्मा से इन्द्रिय गोचर पदार्थों और विश्वासों के प्रति पूर्व धारणाओं को बाहर निकाल कर उसमें उस आकर्षण के प्रति सूक्ष्म प्रभाव प्रकट हो जाता है तो उस देवी सम्पर्क का आनन्द शारीरिक भोगों और आभ्यारमिक सुखों को दबा लेता है । इस अवस्था में इन्द्रिय दमन का कष्टदायक कार्य समाप्त हो जाता है और चिन्तन का माधुर्य उसकी आत्मा को आनन्द विभोर बना देता है ।

जब सच्चा आकाशी अपने में इस आकर्षण, अर्थात् परमात्मा के स्मरण में आनन्द, का प्रारम्भ होता देखे तो उस चाहिए कि वह अपने मन को समग्ररूप से इसे पुष्ट और परिपक्व करने में लगाए रखे जो कुछ भी इससे असंगत हो उससे अपने को वृथक् रखे और यह विचार रखे कि चाहे उसे चिरकाल तक इस सम्पर्क को उत्पन्न करने के लिये प्रयत्नशील रहना पड़े, वह स्वयं कुछ भी नहीं कर सकेगा और अपना वक्तव्य उस ढंग से न पूरा कर पायेगा जैसा कि उसे करना चाहिये ।

“प्रेम ने मेरी आत्मा की वीणा में प्रेम तंत्री को भङ्गन किया और मुझे सिर से पैर तक समग्र रूप से प्रेम में परिवर्तित कर दिया । यह केवल क्षण भर के स्पर्श से हुआ किन्तु क्या समय कभी, आभार प्रदर्शन के शृंग का मुझ पर आरोप कर सकेगा ।”

यह सृष्टियों की एक स्वयंसिद्धि है कि मनुष्य में जो कुछ नहीं है उसे वह नहीं जान सकता । जानी अर्थात् सर्वश्रेष्ठ मनुष्य परमात्मा और विश्व का समस्त रहस्यों को तब तक नहीं जान सकता जब तक वह उन्हें स्वयं में न पा ले । वह सत्ता का सूक्ष्म रूप है, परमात्मा की मूर्ति की एक नकल है और सत्ता की आत्मा है जिसका द्वारा परमात्मा अपने कार्यों का अधलोचन करता है । यास्तविक रूप का बोध होत ॥ वह परमात्मा को

जान लेता है किन्तु वह स्वयं को परमात्मा के द्वारा ही जान पाता है, जो प्रत्येक वस्तु के उसक अपने ज्ञान से भी निष्कट रहता है। परमात्मा का ज्ञान पूषगामी है और आत्म-ज्ञान का कारण है।

ज्ञान का अर्थ एकमेव होना और इस वष्य का बोध होना है कि एकत्व के साथ नानात्व का आभास एक मूत्र और क्षुण्ण स्वप्न है। ज्ञान इस विद्याच को, जो अज्ञानी मनुष्यों को जीवन मर प्रसित रखता है तथा जो उनके और परमात्मा के बीच गहन अधकार की दीवार की भाँति खड़ा रहता है उतार देता है। ज्ञान घोषित करता है कि मैं एक सार्वक शब्द है और कोई भी किसी सकल्य, भावना, विचार अथवा कर्म का निर्देश शुद्ध रूप से अपने अहं क प्रति नहीं कर सकता है।

निश्चारी ने देव वाणी को उससे यह कहते सुना था—

“जब तू अपने को अस्तित्व वाला मानता है और मुझे अपने अस्तित्व का कारण नहीं मानता तो मैं अपना चेहरा छिगा लेता हूँ और तेरा अपना ही चेहरा तरे सामने प्रकट होता है। अतएव तू विचार कर कि क्या तुझे दिखाया गया है और क्या तुमसे छिगाया गया है।”

[यदि कोई मनुष्य अपना अस्तित्व परमात्मा क द्वारा मानता है तो उसमें परमात्मा का अग्र मोचर तन्वी स प्रबल हो उठता है और ऊह नष्ट कर देता है, यहाँ तक कि उस परमात्मा क सिवाय अन्य कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता। इसके निरपीत यदि वह अपना स्वतंत्र अस्तित्व मानता है तो उसक समक्ष उनकी अवाप्तविक अहम्मन्यता ही प्रकट होती है और अल्लाह की हकीकत (परमात्मा का सत्य स्वरूप) उसन सामने से अदृश्य हो जाता है।]

“न तो मेरे प्रदर्शन का ही मान्यता द और न प्रदर्शित वस्तु का, नहीं तो तू हँसगा और रोयगा, और जब तू हँसता और रोता है तब तू तेरा ही रहता है, मरा नहीं जाता।”

[जो व्यक्ति ईवी इस्लाम (प्रकटीकरण) क कार्य का ही मान्यता देता है वह पशुदपवाद का अपराधी होता है, क्योंकि प्रकटीकरण में

प्रकट करने वाला और प्रकटित वस्तु दोनों अपेक्षित हैं और जो कोई प्रकटित वस्तु को, जो इस विश्व सृष्टि का अंश मात्र है, मान्यता देता है वह परमात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु को मान्यता देता है। हँसी का तात्पर्य उस प्रसन्नता से है जो तुम्हें लाभान्वित होने पर होती है और रोदन उस दुःख की ओर संकेत करता है जो तुम्हें हानि उठाने पर होता है। दोनों ही स्वार्थपूर्ण कर्म हैं। ज्ञानी न तो हँसता है और न रोता है।]

“जो कुछ मैंने तेरे समक्ष प्रदर्शित किया है और जो कुछ प्रदर्शित कर रहा हूँ वह सब यदि तू पीछे नहीं छोड़ देता तो तू सफल नहीं होगा और जब तब तू सफल नहीं होगा तू मुझमें केन्द्रीभूत नहीं होगा।”

[सफलता का अर्थ ईश्वर में सच्चा विश्वास है, जिसके लिये सृष्टि की वस्तुओं से पूर्णरूप से निलग हो जाने की आवश्यकता पड़ती है।]

यदि तर्कपूर्ण ढंग से देखा जाय तो यह सिद्धान्त प्रत्येक नैतिक और धार्मिक नियम का अन्त कर देता है। ज्ञानी की दृष्टि में कोई भी देनी पुरस्कार और दण्ड नहीं होने और न उसका सामने उचित और अनुचित का माननीय मापदण्ड ही होते हैं। उसने लिये तो परमात्मा का लिखित शब्द एक सीधे और प्रत्यक्ष इल्हाम द्वारा रह कर दिया गया है।

अमुल्हसन पुरखानी ने घोषित किया है, “मैं यह नहीं कहता कि वैकुण्ठ और नरक (बहिश्त और दोऊल्ल) का कोई अस्तित्व नहीं है वरन् मैं यह कहता हूँ कि वे मेरे लिए कुछ भी नहीं हैं क्योंकि परमात्मा ने उन दोनों की रचना की है और जिस स्थान पर मैं हूँ वहाँ किसी भी शक्ति वस्तु के लिये कोई स्थान नहीं है।”

इस दृष्टिकोण से सभी प्रकार के धर्म समान हैं और इस्लाम मूर्ति पूजा से कुछ भिन्न अन्ध नहीं है। इसका कोई महत्व नहीं है कि कोई मनुष्य कौन-सा धर्म स्वीकार करता है और किन किन धार्मिक कृत्यों को प्रतिपादित करता है।

“सच्ची मस्जिद का निर्माण शुद्ध और पवित्र हृदय में हुआ है

वही सब लोग परमात्मा की उपासना करें,

क्योंकि उसका निवास वही है न कि परपर की मस्जिद में ।”

शानी सब प्रकार के धर्मों और उपासकों में बसल एक बालविक उपासक का ही देखता है ।

इन्मुल अरबी या कथन है — “बा लोग परमात्मा की आराधना सब में करते हैं उन्हें यह सब के सब में दिखाई पड़ता है । बा लोग उसकी उपासना जीवित वस्तुओं में करते हैं उन्हें यह बाग़बायी व रूप में दिखाई पड़ता है । बा लोग उसकी आराधना निर्जीव पदार्थों में करते हैं उन्हें यह निर्जीव पदार्थ व रूप में दिखाई पड़ता है । बा लोग उसे निराकार और अद्वितीय सत्ता के रूप में पूजते हैं उन्हें यह उसी रूप में दिखाई पड़ता है, जिसकी समानता कोई नहीं कर सकता । अपने को तुम किसी धर्म निरास ही पूजत सख्द मत करो, क्योंकि ऐसा करने से शेष सभी धर्मों में तुम्हारी अग्रदत्ता का बायगी । तुम बहुत सी अच्छी बातें सो दागे । इतना ही नहीं बल्कि तुम इस विषय का बालविक सत्य भी नहीं पहचान सकतेगे । सब्बारी और सर्वशक्तिमान परमाना किसी एक ही धर्म में सीमित नहीं है, क्योंकि यह कहता है, “तुम विषय भी बनना मुँह करा अल्ताह का ही चेहरे है ।”^१ जो जिसमें निरास रास्ता है उसी की स्तुति करता है । उसका देना स्वयं एक ही द्वारा रचित होता है और उसकी स्तुति करने में वह स्वयं अपनी ही स्तुति करता है । परिधान स्वयं यह दूसरे व निरासों की निन्दा करता है जैसा कि यह न्याय प्रिय होता है न करता, किन्तु उसकी धृति का आधार अज्ञान है । यदि यह सुनैद कर यह कथन कि “जल जिस पात्र में रहता है उभा पर रग धारण कर लेता है, जान जाय तो वह दूसरे व निरासों में हस्तक्षेप न करे, बल्कि प्रत्येक प्रकार के निरास (धर्म) में परमात्मा को ही देने ।”

हाजिज सम्मन्त रहस्यवाणी की अवेक्षा स्वतंत्र विचारक के रूप में इस प्रकार गाता है —

१—गिनमा तुयल्ल प्रसम्मा बस हुल्लाह । —क़ुरान (१०६)

“मठ की दीवारों पर या मंदिरालय के प्रश्र पर
जहाँ तेरे चेहरे का चलवा पड़ता है,
वहीं प्रेम न बुझने वाली लपट के रूप में प्रकट हो जाता है ।
जहाँ पगड़ी बाँधी हुये जाहिद (सन्यासी)
रात दिन अल्लाह का नाम जपता है,
वहीं प्रार्थना के लिए गिरजे की मटियाँ बजती हैं
और वहीं ईसा का क्रूस होता है ।”

सूफ़ीमत स्वतंत्र विचारकों के सम्प्रदाय से भी सम्बन्ध स्थापित कर
सकता है, जैसा कि इसने बहुधा किया भी है, किन्तु यह कभी भी
साम्प्रदायिकता के साथ नहीं मिलता । इससे स्पष्ट हो जाता है कि
अधिकतर सूफ़ीगण, कम से कम नाममात्र के लिए ही, मुस्लिम सम्प्रदाय
के सड़िप्पु यर्ग से क्यों सम्बद्ध रहे हैं । अम्दल्लाह अन्वारी का पहना था
कि दा सहस्र सूफ़ी शेरों में से, जिनसे यह परिचित था, केवल दो ही
शिया थे । कोई एक व्यक्ति, जो प्रलीश अली का बराज और घमों-मस
शिया था, निम्नलिखित कहानी सुनाता है —

“पाँच बरसों तक मेरे पिता नित्य मुझे एक आध्यात्मिक गुरु के पास
मेजते थे । मैंने उससे एक लाभदायक पाठ सीखा । उसने मुझे बताया
कि जब तक मैं अपने वशाभिमान से पूर्ण रूप से मुक्त नहीं हो जाता,
मैं सूफ़ीमत के बारे में कभी भी नहीं जान सकूँगा ।”

साधारण विचारकों ने बादीमत को सूफ़ीमत की एक शाखा बताया
है किन्तु एक वा स्वभावभिमान स्वभावतः दूसरे के उदार गुणमाही
सिद्धान्त के विरुद्ध है । जिस प्रकार सूफ़ीमत परमात्मा का अधिकाधिक
ज्ञान प्राप्त करता जाता है, उसी अनुपात से उसके धार्मिक पक्षपात कम
होते जाते हैं । शेख अन्दुल रहीम इब्न अल् सन्नाम ने, जिन्होंने पहले
ऊपरी मिस्र में वहाँ की यहूदी और ईसाई जनता के साथ रहना नापसन्द
किया था, अपनी बुद्धावस्था में कहा था कि मैं किसी यहूदी या ईसाई

का उसी प्रसन्नता के साथ गले लगाऊँगा जिस प्रकार स्वयं करने धर्म जाने को ।

जब कि धर्म और सत्कारों के असंख्य रूपों का आन्तरिक महत्त्व दिया जा सकता है, क्योंकि उनका अनुमानित करने वाली आन्तरिक भावना सदैव एक ही होती है, एक दूसरे पहलू से वे सत्य पर आधारित के समान भी प्रतीत होते हैं । वे ऐसे होते हैं जिन्हें निदाने और नष्ट करने के लिए उन्हाड़ी अद्वैतवादी का अत्यन्त प्रयत्न करना चाहिए —

“यह लाज और परमात्मिका मिलकर एक अणु है जिसके भीतर का पत्ती पत्तहीन, उन्हेलित और विरह्य, अधकार में पड़ा है । आत्मिकता और नात्मिकता को इस अणु की जड़ों और छेदों माना । उनके मध्य उन्हें मिलाने और विभक्त करने वाला एक अंतराध है, जिस पर पार नहीं कर सकते । जब वह (परमात्मा) इस अणु को कृपा करने करने के नीचे उठा है तब नात्मिकता और धर्म दोनों सुन हो जाते हैं और अद्वैत रूपी पत्ती अपने डैन पला देता है ।”

महान् आत्मी रहस्यवादी अथ सद् इन्द्र अथ अन्तर न पञ्चाङ्गो या सुनकक द्रव्यं या नान स उन्न मूर्तिमय सिद्धान्तों का आरम्भ जनक निर्भीकता के साथ व्यक्त किया है —

“जब सूर के नीचे प्रत्येक मस्तिष्क यह बाधगी,
तभी हमारा पवित्र धर्म पूरा होगा,
जब तक धर्म और नात्मिकता एक नहीं हो जाते
तब तक सत्त्वा मुसलमान कभी नहीं प्रकट होगा ।”

इस्लाम धर्म के विरुद्ध इस प्रकार की सुनी मुद्रा पाठ्यार्थ आगाह रूप में ही है । पूरा विश्वित सुनिष्ठ और मनाउन पथा इस्लाम के मध्य चौड़ी और गहरी खाड़ी होते हुए भी यदि अधिपत्य न नहीं तो बहुत से सुन्नी ने पैगम्बर का भद्राञ्जलि अर्पित की है और सब मुसलमानों के लिए आधारभूत मक़ि के धार्मिक नियमों का पालन किया है । उन्होंने इन धार्मिक कृत्यों और सत्कारों का नया अर्थ पहिचाना है । उन्होंने

इनका क्यान रूपको में किया है किन्तु इनका परित्याग नहीं किया है । उदाहरणार्थ 'हज' (यन्त्र की तीर्थ यात्रा) को ही ले लीजिए । सबसे सजी की दृष्टि में यह उस समय तक विलुक्त व्यर्थ है जब तक कि इसमें क्रम से किये जाने वाले प्रत्येक धार्मिक कार्य के साथ हृदय में भी उसी प्रकार का परिवर्तन न हो जाय । एक व्यक्ति, जो हज करके लौटा ही था, जुनैद के पास आया । जुनैद ने पूछा :—

“ जिस समय से तुमने अपने घर से यात्रा का भी गलेश किया, क्या उसी समय से तुम समस्त पापों से भी दूर दृष्टे रहे हो ? ” उसने कहा, ‘नहीं !’ जुनैद ने कहा, “तब तुमने कोई यात्रा नहीं की । प्रत्येक विष्णुमरण पर, जहाँ तुम रात्रि में ठहरे, क्या तुमने परमात्मा के मार्ग का कोई स्थान पार किया ? ” उसने उत्तर दिया ‘नहीं !’ जुनैद ने कहा, “तब तुम क्रम से इस मार्ग पर नहीं चले । अब तुमने हाथी का यज्ञ, अपने पल्ल उतार कर, उचित स्थान पर पहिना तो क्या तुमने अपने पल्लों को उतारने के साथ मानव प्रकृति के गुणों पर भी परित्याग किया ? ” ‘नहीं !’ “तब तुमने हाथी का लिबास पहना ही नहीं । अब तुम अस्त्रात स्थान पर लड़े हुये तो क्या तुमने एक क्षण के लिए भी परमात्मा का चिन्तन किया ? ” ‘नहीं !’ “तब तुम अस्त्रात पर लड़े ही नहीं हुए । अब तुम मुन्नालिता गये और अपनी इच्छा पूर्ण की तो क्या तुम समस्त कामेच्छाओं से भी विरक्त हुये ? ” ‘नहीं !’ “तब तुम मुन्नालिता गये ही नहीं । अब तुमने काबा की परिक्रमा की तो क्या तुमने शुद्धता के गेह में परमात्मा का निराकार सौन्दर्य देखा ? ” ‘नहीं !’ “तब तुमने काबा की परिक्रमा की ही नहीं । अब तुम सजा और मर्मा के बीच दौड़े तो क्या तुमने सजा (शुद्धता) तथा ‘शुर-खत’ (सदाचार) का ग्रहण किया ? ” ‘नहीं !’ “तब तुम दौड़े ही नहीं । अब तुमने ‘मिना’ का दर्शन किया, तब क्या तुम्हारे समस्त मुना (इच्छाएँ) मिटी ? ” ‘नहीं !’ “तब तुमने ‘मिना’ का दर्शन अभी तक नहीं किया । अब तुम बलि वेदी पर पहुँचे और बलि पेश की । तब क्या तुमने शंखारिक

इस्लाम के पदायों का भी पालिदान किया। "नहीं।" "तब तुमने पालिदान किया ही नहीं। अब तुमने ककड़ फेंके तब क्या तुमने अपने इन्द्रियसुख विषयक विचारों का भी पालिदान किया।" "नहीं।" "तब तुमने ककड़ फेंके ही नहीं और तुमने अभी तक 'हम' नहीं किया है।"

इस उपाख्यान में आध्यात्मज्ञान के वास्तव धार्मिक नियम की तुलना सुईमत के आन्तरिक आध्यात्मिक सत्य से की गई है और यह प्रकट किया गया है कि उन्हें एक-दूसरे से वृथक् नहीं रहना चाहिए।

दुबसीपी कहता है कि, "सत्य का दिना नियम केवल आन्तरिक है और नियमरहित सत्य केवल पारम्परिक है। उनका पारस्परिक सम्बन्ध का तुलना देह और जीव से की जा सकती है। जब जीव देह से निकल जाता है, तब जीवित शरीर शून्य बन जाता है और जीव वायु का माँति आकार हो जाता है। मुस्लिम धर्म घोषणा में दोनों का समावेश है। वे शब्द कि 'अल्लाह का शिवा और काह दुना नहीं है' सत्य हैं और वे शब्द कि 'मुहम्मद अल्लाह का रसूल (दिपूत) है' नियम हैं। जो सत्य से इन्कार करता है वह काफिर है और जो नियम को अस्वीकार करता है वह पागल है और नास्तिक है।"

लोक प्रसिद्धि के अनुसार यन्त्रि मध्य का मार्ग सुपरिचित होता है, किन्तु इस पर चलना कठिन होता है। केवल भक्त साधन बाध द्वारा ही हृदय को उस गुप्त सिद्धान्त का समान स्तर पर लाया जा सकता है, जिसे सुदीर्घ समय प्रवृत्ति करने हैं। निस्सन्देह उन्होंने इस्लाम के नियम एक महान् कार्य किया है। उन्होंने धर्म की भूसा (वादाद्वार) को निदयता पूर्वक निकाल कर और इस बात पर जोर देकर कि किसी और धार्मिक कार्य द्वारा नहीं, बल्कि आध्यात्मिक माननाओं का ज्ञान करके तथा मनुष्य की अन्तरात्मा को पुनः करण धर्म का गूदे (सात्विक) को घोषणा चाहिए, सारी व्यक्तियों का जीवन सुचारु और विशिष्ट रूप

बनाया है। यह पैगम्बर की शिक्षाओं का यथायोग्य और सर्वाधिक फलदायक विषय था। परन्तु पैगम्बर एक फट्टर एकेस्वरवादी थे, जब कि सृष्टीगण—उनके पथन और कल्पनायें चाहे जो कुछ भी हों—ब्रह्मवादी, विश्वात्मवादी अथवा वेदान्ती होते हैं। जब वे विधेयात्मक धर्म के सिद्धान्तों को मानने वालों की मांति बोलते या लिखते हैं तब वे ऐसी भाषा का प्रयोग करते हैं जिसका समाधान एकत्व के ऐसे सिद्धान्त के साथ, जिसकी हम समीक्षा कर रहे हैं, नहीं किया जा सकता। अज़ीमुद्दीन अल् तिलिम्हानी ने, जिसके निष्पत्तियों पर लिखित भाष्य में वे मैंने कुछ उद्धरण इस अध्याय में दिये हैं, स्पष्ट रूप से कहा है कि सम्पूर्ण कुरान बहुदेववाद है। वेदान्ती दृष्टिकोण से यह ध्यन पूर्णतया सत्य है, यद्यपि बहुत कम सूत्रियों ने इतना स्पष्टवादी होने का साहस किया है।

रहस्यवादी मुयहिद्दीन' (अद्वैतवादी) इस प्रतिकूलता का आभाव स्वीकार करते हैं किन्तु इसकी वास्तविकता से इन्कार करते हैं। वे कह सकते हैं कि "नियम और सत्य (शरोअत और हकीकत) एक ही वस्तु के भिन्न भिन्न रूप हैं। नियम तुम्हारे लिये है और सत्य हमारे लिये है।" तुम्हें सम्बोधित करते समय हम तुम्हारी समझने की सामर्थ्य के अनुसार ही बोलते हैं, क्योंकि जो वस्तु जानियों के लिये पश्य है, वही अदीक्षित व्यक्तियों के लिये विषय है और अविज्ञान व्यक्तियों की धनशयोचरता से उच्चतम रहस्यों की सवगता पूर्वक बचाना चाहिये। यह मनुष्य का केवल तर्क है जो एक ही वस्तु को दोहरा देता है और नियम का सत्य के विरुद्ध संतुलित करता है। इन विरोधों के सकार से निष्कल कर उस परमात्मा के साथ एक हो जाओ जिसका 'शानी' (द्वितीय) पोर भी नहीं है।"

शानी यह मानता है कि नैतिक क्षेत्र में नियम प्रबल एवं आवश्यक है। जब तक अच्छाई और बुराई है तब तक नियम दोनों के ऊपर आशा देता निषेध करता, पुरस्कार करता और दण्ड देता कायम रहता है।

दूसरी श्रार वह यह भी जानता है कि वास्तव में केवल परमात्मा ही अस्तित्वशील तथा सक्रिय है। अतएव यदि धुराई वास्तव में है तो यह देवी होनी चाहिये और यदि बुरे काय वास्तव में मिल जाते हैं तो उनका वक्ता परमात्मा का ही होना चाहिये। निश्चय ग्रन्थ है, क्या कि मलना ही गुलन है। धुराई का कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं है यह अस्त है। अर्थात् सत् का अभाव है जैसे कि प्रकाश का अभाव ही अंधकार है। गूरी कहता है, “एक बार मने प्रकाश का (परमात्मा को) देखा और मैंने अपनी टकटकी उस पर टिपर कर दी वहाँ न क रि में प्रकाश स्वरूप हो गया।” कोई आश्चर्य नहीं यदि ऐसी प्रकाशमात आत्माएँ, जो इस असत्य जगत में घम और मैनिक्ता के छाया दृश्यों के प्रति पूर्णतः उदासीन हैं, जलाशुनी के साथ इस प्रकार कह उन्ने को प्रस्तुत रहे —

“इरर-मत्त सत्य से बुद्धिमान् होता है।

इरर-मत्त पुस्तन से विद्वान् नहीं होता है।

इरर मत्त पमापम स परे होता है।

इरर-मत्त उचित अनुचित का समान जानता है।”

स्मरण रखना चाहिय कि यह सिद्धान्त पूर्णतः का है और जिन लोगों को यह निवम का ऊपर उठाता है व सन्, आध्यात्मिक गुण तथा गम्भीर मन्त्रादी बात हैं। वे परमात्मा का गिण्ट कृपा पात्र होत्र हैं। परिणाम स्वरूप, उन पर बाधन लगाने, दयालु दानने अथवा दण्ड देने की पाई आनश्यरुता नहीं होती है। अत्राय करने में निश्चय ही यह सिद्धान्त बड़ दिशाओं में अधिस्तरपरिपराद तथा लान्यता परे श्रार ले जाता है जैसा कि ‘वक्ताशियों’ और तथाकथित ‘निचनरहित’ दर वरों का अन्य सम्प्रदायों में होता है। मध्य युग में इही सिद्धान्तों ने मित्रुन ऐसा ही प्रभाव मूला में उभर रिता और निरर इतिहास्यर उन प्रथाचारों की उपस्था नहीं कर सक्या, जिनका लिये पूर्णतः से

वैयक्तिक रहस्यवाद उत्तरायणी है। किन्तु इस समय हमें गुलाब के फूल से ही मतलब है, न कि उसमें लगे हुये कीड़ों से।

सभी छद्मी ज्ञानी नहीं होते और जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है जो लोग अभी ज्ञान प्राप्ति के लिये परिपक्व नहीं हुये हैं, वे अपने ज्ञानी गुरुओं से अपनी आवश्यकताओं के अनुसार नैतिक शिक्षा प्राप्त करते हैं। जलालुद्दीन रूमी ने अपने गीतों के संग्रह 'दीवाने गम्भी तबरीज' में निश्वात्मवादी धर्मोपाद को, जो सभी बस्तुओं को अनन्त के रूप में ही देखता है, खुली छूट दे दी है —

“मैंने द्वैत भावना मिटा दी है, मेरी दृष्टि में दोनों लोक एक ही हैं।

मैं एक ही को देखता हूँ एक ही को जानता हूँ, एक ही को देखता हूँ, एक ही को पुकारता हूँ।

मैं प्रेम के प्याल से मदमस्त हूँ, दोनों लोक मेरी दृष्टि से ओमल हो चुके हैं।

मुझे विषाध मदिरापान और रंगेलियों मनाने के कोई वाम नहीं है।”

किन्तु अपनी 'मस्नवी' में जो एक प्रसिद्ध कृति है और जिसे आदरपूर्वक 'आरख का क़ुरान' कहा जाता है, यह हमें गम्भीर मुद्दा में छद्मी सिद्धान्तों की विस्तार से समझाता और मनुष्य के लिये परमात्मा द्वारा बनाय गये नियमों का औचित्य सिद्ध करता हुआ दिखाई पड़ता है। यद्यपि यह पक्का आशावादी है और ग़ज़ाली से इस बात पर सहमत है कि यह सचारा सभी सम्भव सचारा से श्रेष्ठ है फिर भी यह मुद्दे की समस्या को वास्तविकता से परे की वस्तु मानकर एकदम से अस्वीकार नहीं कर देता, बल्कि यह यह दिगाने का प्रयत्न करता है कि मुद्दे, सचारा का कुछ भी हमें मुद्दा प्रतीत होता है, देनी आका और सामान्य का एक अंग है। उसकी तपपूर्ण नियोजना के कुछ अनुसंधान उद्घृत

पर मैं यह निर्णय अपने पाठकों पर ही छोड़ दूँगा कि यह कहाँ तक सफल अपना बतलाने योग्य है।

स्मरण रखना चाहिये कि सूक्ष्मगुण मिश्र की कल्पना परमात्मा की अभिव्यक्ति और प्रतिबिम्बित प्रतिमा के रूप में करते हैं। अनेक उद्गमों से निष्पन्न कर देवी प्रवाय अन्ततोगत्या असत्स्वी अधकार पर पड़ता है, जिसका प्रत्येक अणु परमात्मा का कोई न कोई गुण प्रतिबिम्बित करता है। उदाहरणार्थ प्रेम और दया के सुन्दर गुण बहिस्त (वैजुष्ट) और क्रिश्तो के रूप में प्रतिबिम्बित होते हैं तथा क्रूर (रात्र मोघ) और इन्तकाम (प्रतिशोध) के भयकर गुण दोष (नरक) तथा शैतानों के रूप में प्रतिबिम्बित होते हैं। मनुष्य सुन्दर और अमन्द सभी गुणों को प्रतिबिम्बित करता है यह स्वर्ग और नरक का सत्तित समूह है। उभर प्रप्याम एही सिद्धान्त की आधार रखत करता हुआ कहता है —

“दाज्ज हमारे निष्फल बन्धों से प्रकट एक चिनगारी है,

स्वर्ग हमारी प्रसन्नता के समय का एक क्षण है।”

इस द्विपद को छिट्छ जराह ने अत्यन्त सुन्दर छन्द में ढाल दिया है —

स्वर्ग सबल सुन अभिलाषार्था परी कल्पना है और
नरक प्रज्वलित आत्मा परी उस अधकार पर पड़ता धाना है,
जिसमें से हम बहुत देर से निजल किन्तु जिसमें हम बहुत
बहुर ही नष्ट हो जायेंगे।

अतएव एक प्रकार से जलालुद्दीन रुमाई के यत्न का आरोप परमात्मा में ही पड़ता है किन्तु साथ ही साथ यह परमात्मा के स्वभाव में दुर्गति का वास्तविक रूप में अस्वीकार्य मानता है, क्योंकि यह दुर्गति ही गुणों का प्रतिबिम्ब है जो स्वयं पूरुष से अलग हैं। जहाँ तक रुमाई पान्थ में रुमाई है, वह अस्तु से प्रकट होती है। यदि हम स्वयं का परमात्मा से सम्पर्क और मनुष्य से सम्बन्ध के अनुसार एक भिन्न महत्त्व देता है। परमात्मा के सम्बन्ध में अस्तु का अर्थ ज्ञान है क्योंकि पान्थ

विक सत् केवल परमात्मा है, किन्तु जहाँ तक मनुष्य का सम्बन्ध है वुराह का सिद्धान्त मानव प्रकृति के आवे माग पर लागू होता है। एक दशा में यह एक निषेध मात्र है, दूसरी दशा में निषेधात्मक और क्रियाशील रूप से अवतरण है। इसलिये कि यदि अपने स्वर्ग में स्वयं पंग गया है, हमें उससे भगवन् की आनश्यकता नहीं है। कुछ ऐसे भी अन्तर आते हैं, जब अष्ट नैतिर मायना किसी भी प्रकार का अति सूक्ष्म चिन्तन के समकक्ष पहुँच जाती है।

यह स्पष्ट है कि देवी मिलन का सिद्धान्त प्रारम्भ का उल्लिखित करता है। जहाँ परमात्मा है और उसके सिवा कुछ भी नहीं है, वहाँ कोई अन्य कता नहीं हो सकता और उसके सिवा दूसरे का कोई कार्य नहीं हो सकता। “अब तूने कैसा तो तूने नहीं कैसा धरन् अस्ताह ने कैसा”^१ वाध्यता की अनुमति केवल उन लोगों की होती है, जिनमें प्रेम का अभ्यास होता है। परमात्मा को जानना उससे प्रेम करना है। शानी का उत्तर भी उसी दरपेय की भाँति हो सकता है, जिसने यह पूछे जाने पर कि उसने कैसा यात्रा की, कहा था —

“मैंने उसके समान यात्रा की जिसके महान् संकल्प द्वारा पृथ्वी घूमती है भाद्र आती है, नदियाँ बहती हैं और तारामण अपने मार्गों पर चलते हैं मृगु और जीवन जिसका शोक और हृष के मग्री हैं जा निभर हैं उसकी यात्रा पर और पहुँचते हैं पृथ्वी के घोंने-बाने तक।”

यही इष्टीकृत (सत्य) है। किन्तु जिनकी सामर्थ्य से यह बाहर है, वे भी लोगो को सामान्य चरने के लिये जलानुमान परमात्मा के न्याय पर प्रतिपादन यह कहता हुआ करता है कि मनुष्यों को यह धुनन का अधिकार है कि वे किस प्रकार कार्य करें, यद्यपि उनकी स्वतंत्रता दी

इन्द्रा के अधीन है। "परमात्मा क्यों बुराई का बनाता और निपुण करता है," इस प्रश्न का सन्तुष्टिकरण करते हुये वह जवाब देता है कि वस्तुएँ अपनी असक्तियों द्वारा जानी जाती हैं और अन्धाई के प्रकाश में आने के लिये बुराई का अतिव्यव आवश्यक है।

"जहाँ पक्षी असत् और घुटि के दर्शन होन हैं, व सत् के सौन्दर्य के लिये दर्पण के समान हैं। टूटा पीर लिये पद रागा के सिवा अन्य किस पर हड्डी बैठाने वाला करना कौशल दिता सकता है? यदि इराव किम्ब का ताँवा परिया में न होता रत्नान्न शास्त्री अपनी कला कैसे दिता सकता है?"

और यदि बुराई की सृष्टि न हुई होती तो परमात्मा की सर्वशक्ति मानता का धोष भी पूर्णरूप से न होता।

"जैसा कि नू पहता है वह बुराई का उद्गम है फिर भी बुराई उसे हानि नहीं पहुँचानी। बुराई का निमाण ही उसका निपुणता का चोनित्र करता है। म एव दृष्टान्त सुनाता है स्वर्ग का पलासार सुन्दर कुम्ह आकृतियाँ चित्रित करता है। एक चित्र में मित देव की सर्वोत्तम सुन्दरियों युवा युवक का दृष्टदृष्टी लगाए कामादुर हाकर देव रहा हैं। उसी हाथ द्वारा बनाये गये एक दूसरे चित्र में नरकमि और करने भयकर जल्य सहित इल्लीय (रत्ना) का राजा) दिखाई पड़त हैं। दोनों सर्वोत्तम कृतियाँ हैं और इनका निर्माण अन्ध उद्देश्यों के लिये, अर्थात् उसकी पुण प्रतिमा को प्रश्रित करन का उसकी निपुणता का इकार करने वाला मानिनी का आश्चर्यचकित कर देने के लिए, हुआ है। यदि वह बुराई का न बना सकता तो उसका कौशल में कमी दिखाई पड़ती। इसलिए वह काठिर (विपरीत) और अपने मुश्नमान, दोनों का एक समान ही बनाना है ताकि दोनों ही उसका खादी रहें और उस एक सर्वशक्तिमान प्रभु की उपासना करें।"

जो परमात्मा बुराई का निमाण करता है वह स्वयं भी दुःख होगा, यह आचार्य के उत्तर में अलास्तुदीन कला से दी गयी उम्मा का अनुसरण

करते हुये कहता है कि चित्र में कुरूपता होना चित्रकार की कुरूपता का कोई प्रमाण नहीं है ।

बुराई के अमान में आत्म विषय के पुरस्कार पवित्र गुणों को प्राप्त करना असम्भव हो जायगा । निगलने के पहले रोटी को तोटना आवश्यक है और अगूर जब तक कुचले नहीं जाने, उनसे मदिरा नहीं प्राप्त की जा सकती । अनेक मनुष्य कष्ट सह कर ही प्रसन्नता प्राप्त करते हैं । जैसे जैसे बुराई घटती है अच्छाई बढ़ती जाती है । अन्त में अधिकांश बुराई का आभाव मान गह जाता है । जो एर के लिये अभिशाप प्रतीत होता है वही दूसरे के लिए परदान हो सकता है इतना ही नहीं उच्च शक्तियों के लिए बुराई ही अच्छाई में परिणत हो जाती है । जलालुद्दीन यह नहीं स्वीकार करता कि कोई वस्तु पूर्णरूप से बुरी हो होती है ।

“मूल लोग जानो सिक्के इसलिए लते हैं कि वे असली के समान हाव हैं । यदि सत्कार में दरमाल में धन असली सिक्के न चलते होते तो जाली सिक्के बनाने वाले जाली सिक्कों को कैसे चलाते । असत्य का कोई अस्तित्व नहीं है जब तक उसे स्वीकार करने के लिए सत्य मौजूद न हो । उचित के प्रति प्रेम ही मनुष्यों का अनुचित की ओर जाने का प्रणामन देता है । बिय को चीनो में मिलाने मर दो और वे लोग इसे अपने मुँगों में ठँस-ठँस कर मर लेंगे । यह मत बिल्लाआ कि सभी धर्म बरत हैं ! सत्य की कुछ मुगध उनमें अवश्य है अन्यथा वे मनोरञ्जक न होते । यह मत कहा कि वे पूर्णरूप से काल्पनिक हैं । संसार में कोई भी कल्पना पूर्णरूप से असत्य नहीं है । दरखेरा की भीड़ में बाद एक उंचा शरीर खड़ा रहता है । अच्छी तरह से दूँदो और तुम उसे पा जाओगे ।”

निर्णय ही यह एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है । दान्ते के जन्म से कुछ ही वर्ष बाद जलालुद्दीन की मृत्यु हुई किन्तु इसाद यदि अपने मुस्लिम सनकनीन की उन्मत्तता और सहिष्णुता के स्वर से बहुत ही नीचे है ।

सुरी वस्तुओं में अच्छाई की आत्मा के दर्शन करना किस प्रकार सम्भव है ! बलालुदीन का कथन है कि ऐसा प्रेम द्वारा और फल प्रेम-बलित ज्ञान द्वारा सम्भव है, जैसा कि परमात्मा ने पवित्र गाथा (कुरान शरीफ) में कहा है

“मेरा संरक्ष मेरे निम्न पहुँचना है और मैं उससे प्रेम करता हूँ । तब मैं ही तमका पान, आँख, जिह्वा तथा हाथ होता हूँ ताकि वह मेरे ही द्वारा सुने, देखे, धोने और ग्रहण करे ।”

यद्यपि रहस्यवादी प्रेम का वर्णन एक पृथक् अण्डाण्ड में करना अधिक सुगम होगा, पाठकों को यह न साँचना चाहिये कि उनका समझने एक नया नियम खुल रहा है । ज्ञान और प्रेम आध्यात्मिक रूप से समान हैं वे एक ही सत्य की भिन्न भिन्न भाषा में उपदेश करते हैं ।



चतुर्थ अध्याय

दैवी प्रेम

इस्लाम में रहस्यवादी कविता से परिचित किसी भी व्यक्ति ने यह ध्यान दिया होगा कि आत्मा की परमात्मा के प्रति आकांक्षा साधारणतया लगभग उन्हीं शब्दों में अभिव्यक्त की जाती है जिनका प्रयोग किसी पूर्वीय अनाक्रेयन अथवा हेरिक न किया है। वास्तव में यह समानता प्रायः इतनी निकट होती है कि जब तक हमें कवि के शब्दों का कुछ पता न हो, हम उसका अभिप्राय समझने में दुर्गिहा में पड़े रहते हैं। सम्भव है कुछ दशाओं में यह अस्पष्टता ब्रह्मात्मक उद्देश्य की पूर्ति करती हो, जैसा कि हाफिज़ के गीतों में है, किन्तु उन दशाओं में भी, जबकि कवि अपने पाठकों को ज्ञान बूझकर पृथ्वी और स्वर्ग के बीच लटकाने नहीं खाना चाहता किसी रहस्यवादी भजन को भूल से मद्यों का गाना या प्रेमी का साध्य-गीत समझ लेना बिल्कुल सरल है। अरबों में उत्पन्न सबसे महान् प्रसन्नवादी इब्नुल अरबी का अपनी कुछ कविताओं पर, इस कलकपूर्ण आराधना का लक्षण करने के लिए कि वे उसकी स्पेलिन व रूपलापण की प्रशंसा हनु लिखी गई थी, मान्य लिखने के लिये बाध्य होना पड़ा। कुछ पत्तियाँ नीचे दी जाती हैं —

“अहो ! तू कामलाङ्गिनी क लौहर्ष्य की समक देखा प्रकाश देती है, जिस छिंदरे में चलने वाले का दीपक प्रकाश देता है।

यह संगमूला के समान करले केरों की सीप में छिपा हुआ एक मोती है।

देखा मोती, जिसने लिये ध्यान होता लगाकर उस सागर की गह गहरों में सदा दृष्टा रहता है।

चतुर्थ अध्याय

दैवी प्रेम

इस्लाम में रहस्यवादी कविता से परिचित किसी भी व्यक्ति ने यह ध्यान दिया होगा कि आत्मा की परमात्मा के प्रति आकाङ्क्षा साधारणतया लगभग उन्हीं शब्दों में अभिव्यक्त की जाती है जिनका प्रयोग किसी पूर्वीय अनाक्रेशन अथवा हेरिक ने किया है। वास्तव में यह समानता प्रायः इतनी निकट होती है कि जब तक हमें कवि के शब्दों का कुछ पता न हो, हम उसका अभिप्राय समझने में दुविधा में पड़े रहते हैं। सम्भव है कुछ दशाग्रों में यह अस्पष्टता कलात्मक उद्देश्य की पूर्ति करती हो, जैसा कि हाफिज के गीतों में है, किन्तु उन दशाग्रों में भी, जबकि कवि अपने पाठकों को ज्ञान घूमकर पृथ्वी और स्वर्ग के बीच लटकाने नहीं रहना चाहता किसी रहस्यवादी भजन को भूल से मधुरों का गाना या प्रेमी का साध्य-गीत समझ लेना बिल्कुल सरल है। अरबों में उत्तम सबसे महान् मसबानी इब्नुल-अरबी को अपनी कुछ कविताओं पर, इस कर्तव्यपूर्ण आरोप का पखान करने के लिए, कि वे उसकी रसेलिन व रूपलावण्य की प्रशंसा हेतु लिखी गई थीं, भाष्य लिखने के लिये बाध्य होना पड़ा। कुछ पंक्तियाँ नीचे दी जाती हैं —

“अद्या ! उक्त कामलाङ्गिनी व सौन्दर्य की चमक ऐसा प्रकाश देती है जैसे झोंपेरे में चलन वाले का दीपक प्रकाश देता है।

वह समझा के समान वाशे पेशों रूपी खीर में छिपा हुआ एक माती है।

ऐसा मोती, जिसके लिये ध्यान गाता लगाकर उस सागर की गह राहों में सतत दृष्टा रहता है।

मन्दिर है और हाजी व गिये काफ़ा है। शरीअत की सज़ा और क़ुरान का प्रय है। मैं प्रेम धर्म का अनुगामी हूँ उसका ऊँट चाहे जिस मार्ग से जाय। मेरा धर्म और मेरा विश्वास ही सच्चा धर्म है। हिन्द और उसकी पहन के प्रेमी विश्व, कैस और लुन्ना तथा माय्या और गैलान हमारे आदश हैं।”

अन्तिम पद का भाष्य करत हुये कवि लिखता है —

“प्रेम, क़वा (हृद्) प्रेम, की हज़ीज़न उन अरबी प्रेमियाँ के लिये और मेरे लिये एन ही है, किन्तु हमारे, प्रेम व लक्ष्य भिन्न भिन्न हैं, क्योंकि ये एक गाँवर पदाथ से प्रेम करने से जबकि मैं ‘हृद्’ से प्रेम करता हूँ। व हमारे आदश इसलिये हैं कि परमात्मा ने उन्हें मानवों के प्रति प्रेम का पट्ट इस उद्देश्य से दिया कि वह उनसे द्वारा उन लोगों की असफलता का प्रदर्शित कर सके, जो उससे प्रेम करने का दावा तो करत हैं किन्तु उससे प्रेम करने में एसी आनन्द रिभोधा और प्रसन्नता का कोई अनुभव नहीं करते, जिसने उन आसक्त मनुष्यों का विवेकान्त्य और अपने प्रति अचेत बना दिया था।”

मध्यकालीन महान् युद्धों में से अधिकार सूत्री परमात्मा का स्वप्न देगन हुए उसके नशे में मस्त साधुमय जीवन बिताया करते थे। जब ये अपने स्वप्न की चचा करने का प्रयत्न करत तो मनुष्य होने के नाते मानवीय भाषा का ही प्रयोग करते थे। यदि वे भी साहित्यिक कलाकार हात तो व्यापारिक रूप से अपने युग और अपनी पीढ़ी की रीढ़ी में लिगत। रहस्यवादी कविता के क्षेत्र में प्रारम्भी कवि अरबी कवियों से बान्नी मार ले गये हैं। जो व्यक्ति सूत्री मत के रहस्य का अध्ययन करना चाहता है उस चाहिये कि यह धर्मशास्त्र सम्प्रदायी लेखों के शोक को हटा कर तथा आमा-निषयक सूत्रताओं के जाल से निकल कर अन्तार, जलालुद्दीन रुमी तथा जामी का अध्ययन करे। इनकी रचनाएँ अरात अंग्रेज़ी और अन्य यूरोपीय भाषाओं में उपलब्ध हैं। इन अद्भुत मन्त्रों का अनुवाद करना उनके स्वर को बिगाड़ना और उनके मानों के ऊँची

यह होता है कि “देवी चिन्तन के आनन्दातिरेक में अपने आगतिक अह को सुला दो।” इस प्रकार के उपाहरणों से पृष्ठ के पृष्ठ भरे जा सकते हैं।

यह प्रेम सम्बन्धी तथा मद्य सम्बन्धी प्रताक्वाद इस्लामी रहस्यवादी कविता की ही विशेषता नहीं है किन्तु इतनी पूर्णता और इतने उन्नत ढंग से इसका प्रदर्शन अन्यत्र कहीं नहीं हुआ है। यूरोपीय आलोचकों ने इसे बहुत गलत ढंग से समझा है और उनमें से एकाध अब भी सूत्रियों के आह्लाद (भावविषादस्था) को “अशत मदिरा से अनुप्राणित और विषय-वासना से अतिरिञ्चित” कहते हैं। तहाँ तक सम्पूर्ण सूत्री सम्प्रदाय का सम्बन्ध है यह आरोप बिल्कुल असत्य है। उनकी रचनाओं का अध्ययन करने वाला कोई भी बुद्धिमान और निष्पक्ष विद्यार्थी यह आरोप नहीं लगा सकता और हम यह अवश्य ही जानना चाहते हैं कि यह किस प्रकार का प्रमाण पर आधारित है। प्रत्येक सम्प्रदाय में पापात्मा (विद्वान्त विरुद्ध कार्य करने वाले) होते हैं, और सूत्रियों में भी हमें ऐसे अनेक पापपूर्ण लम्पट और मन्त्र मिलने हैं जो अपने परित्र बाधुओं के नाम को धलमिक्त करते हैं। किन्तु इन पापस्थियों का अत्यधिक भ्रष्ट कार्यों के आधार पर सूत्रमत पर समाप्य निर्णय दे देना उतना ही अनुचित है जितना ईसाई रहस्यवाद का इस आधार पर दोषपूर्ण कहना कि उसमें कुछ धर्म और व्यक्ति भ्रष्ट होते हैं। जलालुद्दीन कहता है —

“तुम्हारा ही साक्षी है और यही शराब है।

यही जानता है कि कैसा मरा प्रेम है ॥”

इन्तुल अरबी यह पाण्डित्य करता है प्रेम-रूरी धर्म और परमात्मा के प्रति श्रीसुक्व स भेष्ट अन्य पाई धर्म नहीं है। प्रेम सब धर्मों का सार है, यह चाहे जो रूप धारण करे, सचा रहस्यवादी इसका सदैव स्वागत करता है।

‘मरा इन्म प्रयन रूप क योग्य हा गया है यह भृगुशास्त्रों के रागाह है और ईसाई साधुओं का लिये मट है, मूर्खियों के लिये

मन्दिर है और हाजा व लिये बना है। गरीबों की तरफ और कुरान का प्रय है। मैं प्रेम धर्म का अनुगामी हूँ उसका ऊँट चाहे जिस मार्ग से जाय। मेरा धर्म और मेरा विराम ही सच्चा धर्म है। हिन्द और उसकी बहन व प्रेमी विध, जैसे आर सुन्ना तथा माया और गैलान हमारे आन्ध हैं।'

अन्तिम पत्र का माध्य परत हुय करि लिखता है —

"प्रेम, कृपा (हृद) प्रेम, का हृदाइन उन अरबी प्रमियां व लिये और मरे लिये एक ही है, किन्तु हना, प्रेम व लक्ष भिन्न भिन्न हैं, क्योंकि व एक गाँवर पदाय से प्रेम करने व जबकि मैं 'हृद' से प्रेम करता हूँ। व हमारे आदेश इसलिये है कि परमाना न उह मानना व प्रति प्रेम का पट इस उद्देश्य से दिया कि यह उनका द्वारा उन लोगों की अस्मिता का प्रशिक्षित कर सक, जो उससे प्रेम करने का दावा वा करते हैं किन्तु उससे प्रेम करने में एसी आनन्द विभासता और प्रसन्नता का कोई अनुभव नहीं करने, जिसने उन आसक्त मनुष्यों का विध्वंस्य और करने प्रति अचेत बना दिया था।"

मध्यकालीन महान् सृष्टियों में से अधिकांश सूरी परमाना का स्वप्न देवता हुय उसका नश में मन्त्र साधुनन जीवन शिवाया करते थे। जब व करने स्वप्न की खोज करने का प्रयत्न करने वा मनुष्य होने व नाते मानवीय भाग का ही प्रयोग करने थे। यदि व भी साहित्यिक कलाकार हाते वा व्यापारिक रूप से करने मुग और अनी पत्र की रचना में लिखते। रहस्यवादी कविता व सूत्र में आरबी कवि अरबी कविता से शायी मार ले गये हैं। जो व्यक्ति सूरी मत व रहस्य का अध्ययन करना चाहता है उस चाहिये कि यह धर्मशास्त्र सम्बन्धी लोगों के पास को हटा कर तथा आना-विषयक सूत्रवाच्यो व जाल निबन्ध पर अचार, बनावुगन रूनी तथा जानी का अध्ययन करे। इनकी रचनाएँ अराब अमेरी और अन्य यूरोपिय भाषाओं में उल्लेख हैं। इन अद्भुत मन्त्रों व अनुवाद करना उनके मर व बिगाड़ना और उनके भासों व ऊँची

उद्धान को पृथ्वी पर उतार लाना है किन्तु गयात्मक अनुवाद भी उनको अनुप्राणित करने वाले 'हक' के प्रति प्रेम और सौ-दर्य के प्रतिभासित दृश्य को पूर्ण रूप से नहीं दिया सकता । जलालुद्दीन की वाणी पुन मुनिये —

“देख चन्द्रमा थी मौलि, बिसकी समानता करने वाला आकाश ने स्वप्न में या जाग्रत अवस्था में नहीं देखा ।

यह (परमात्मा) अनन्त शाली से विभूषित आता है जिसे कोई बाद नहीं बुझ सकती ।

हे प्रभु, देख ! तेरी प्रेमरूपी सुराही क्षाय मरी आत्मा तैर रही है, और मेरा शरीररूपी कच्चा गेह नष्ट हो गया है ।

जब मेरे निर्बल हृदय में उस अगूर दाता ने पहले पहल बास बिपा, मदिरा मेरे बल में भभक उठी और मरी नाकियाँ भर उठी ।

किन्तु मेरी आँखों के समक्ष जब एक मात्र उसकी ही मूर्ति रह गयी तब यह ध्वनि आयी ।

हे सर्वोच्च मदिरा और अनुपम प्याले ! हमने खूब काम किया ।”

इस प्रकार वह प्रतीकात्मक दृश से चार्णित प्रेम धर्म का भावात्मक तत्त्व, सिद्ध पुण्य का आनन्दातिरेक, शरीर का साहस, सत का विश्वास तथा नैतिक पूर्णता एवं आध्यात्मिक ज्ञान का एक मात्र आधार है । त्रिपात्मक रूप से यह आत्म विराग और आत्म-त्याग है । अर्थात् अपना सर्वस्व—सम्पत्ति, सम्मान, संकल्प, जीवन तथा अन्य का कुछ भी मनुष्य के लिये मूल्यवान् है—अनन्य प्रियतम के लिये बिना प्रतिफल की कामना बिना परित्याग कर देना है । मैं पहले ही सज्जत कर चुका हूँ कि प्रेम सही नीतिशास्त्र का सर्वोच्च सिद्धान्त है और अब मैं इसके कुछ उदाहरण दूँगा ।

ते दयाय नरपथी नामूम मा ।

० तथीय जुमला इन्लत हाय मा ।

हर मि रा जामा जे इराजे पाक शुद ।

ऊ जे हिसें एथ सुखी पाक शुद । (मीलाना रूमी)

जलालुद्दीन का कहना है कि "प्रेम हमारे अभिमान और अहङ्कार की शोषधि है, हमारी समस्त कमज़ारियों का चिकित्सक है। जिसका स्वयं प्रेम में फट जाता है वहाँ पूरा रूप उस निःस्वार्थ होता है।"

नूरी ख़ुदायन एक अन्य सूक्ति पर काफ़िर होने का आरोप लगाया गया और उन्हें मृत्युदण्ड दिया गया।

"बदर बल्लाद ख़ुदायन के निकट आया, नूरी ने उत्तर तब की अपने मित्र के ध्यान पर अत्यन्त प्रसन्नता और नम्रता के साथ पत्र कर दिया। सभी दशक स्वस्थ रह गये। जलाल ने कहा, हे मुन्सर तलवार ऐसी बस्तु नहीं है जिसमें मिलने के लिए लोग इतने व्याकुल हो और तुम्हारी धारी अभी नहीं आयी है।" नूरी ने उत्तर दिया, 'मरे धन का आधार निःस्वार्थता है। जीवन सवार में सबसे मूल्यवान् बस्तु है। जीवन के कुछ निःशेष चयन का मैं अपने शत्रुओं के लिए बलिदान कर देना चाहता हूँ।"

एक अन्य अवसर पर लोगो ने नूरी को इस प्रकार प्रार्थना करत हुए सुना था —

"हे मुन्सर, अपने अनन्त ज्ञान, शक्ति और इच्छा से अपने ही रचे हुए प्राणियों का तुम नरक में दण्ड देत हो यदि तुम्हारी निन्दुर इच्छा मनुष्यों से नरक की मर देने की है तो फल मुझसे ही उस मर सकत हो और उन मनुष्यों को स्वर्ग में भेज सकते हो।"

जिस अनुमान से सूरी परमाना से प्रेम करता है, वैसा ही वह उससे समस्त प्राणियों में परमाना का दर्शन करता है और उनसे साथ उठता का व्यवहार करता है। बिना प्रेम के परित्र काम कुछ भी नहीं है।

"किसी दुम्मी हृदय को प्रत्यक्ष करो, तुम्हारा यह मुन्सर काय सहस्रो मन्दिरों के निर्माण से बन्कर हागा।

एक स्वतंत्र व्यक्ति, जिस तुम्हारी दयालुता ने गुलाम बना लिया है, सहस्रो शत्रुओं के साथ गुलामों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है।"

'सुखजनानी सन्तों की गाथा' पशुओं, पृथिवी मुत्ता पक्षियों तथा

फिरां तब के प्रति प्रदर्शित दया की कहानियों से भरी पड़ी है। कहा जाता है कि शायज़ीद ने हमारादान में कुछ इलायची व दाने खरीदे। वहाँ से खाना होने व पूर्व उसने कुछ इलायचियों को, जो उसक पास बची हुई थीं, अपने चाँगे में रख लिया। निस्तान पहुँचने पर उसे अपने किये हुये की याद आयी। उसने दानों को निकाला तो देखा कि उसमें बहुत सी चींटियाँ लगी हुई हैं। "मैं इन बेचारियों को इनके घर से बहुत दूर उठा लाया हूँ," ऐसा कहते हुये वह तुरन्त ही लौट पड़ा और कई सौ मील की दूरी तै कर हमारादान पहुँचने पर ही राहत की साँस ली।

यह सर्वभूत के प्रति दया विस्वात्मवाद की एक रीति है। प्रारम्भिक सृष्टियों में व्याप्त सकार के प्रति वैराग्य की भावना ने तथा उनकी इस स्पष्ट चेतना ने कि अल्लाह एक अन्तरस्थ आत्मा न होकर सर्वभ्रेष्ठ-व्यक्तित्व है, उनसे मानवीय सम्बन्धों को निदयतापूर्वक कुचनवाया। नीचे पुत्रैल इब्न इमाद व जीवन की एक छाती-सी कहानी दी जा रही है। यह यदि शिक्षाप्रद नहीं तो मर्मस्पर्शी अवश्य ही है।

"एक दिन यह अपनी गोद में चार बप का बच्चा लिये था। जैसा कि पिताश्री का ढंग है, उसने बच्चे का चुम्बन ले लिया। बच्चे ने पूछा, 'आग, क्या आप मुझे प्यार करते हैं?' 'हाँ', पुत्रैल ने उत्तर दिया। 'क्या आप परमात्मा से प्रेम करते हैं?' 'हाँ' 'आपका भित्ति हृदय है?' 'एक।' 'तब आप एक हृदय से दो को कैसे प्रेम कर सकते हैं?' बच्चे ने प्रश्न किया। पुत्रैल समझ गया कि बच व शब्द उस परमात्मा द्वारा दी गयी चेतावनी हैं। परमात्मा व प्रति भावावश म यह अपना धिर पीन्ने लगा। बच्चे व प्रति अपने प्रेम पर उस बहुत परनास्ताप हुआ और उसने अपने हृदय को पूणरूप से परमात्मा में रूपा दिया।"

जैसा कि बलालुद्दीन रुमी ने कहा है, उच्चतर सूत्री रहस्यवाद यह सिगाता है कि गाबर जगत् 'हक' तक पहुँचन का एक मुल है।

"तेरा प्रेम बाहे इस सगर व प्रति हा चाहे उस सगर व,
अन्त में यह मुक्त उस पार अवश्य ले जायगा।"

एक अनुच्छेद में, जिसका अनुवाद प्रोफ़ेसर ब्राउन ने किया है, यह इस प्रकार कहता है —

“साधारण प्रेम से अपना मुँह मत माँड़,
यह तुम्हें हृदय तक उँचा उठा सकता है ।
यदि प्रारम्भिक अक्षरों का ज्ञान तुम्हें टीन-टीक ॥ गया,
तो तू कुपन के छूट के छूट रह सकता है ।
मुना है कि अपने पात्र नियम पर उत्प्रेष की लालछा से
एक निराधी एक महामा के पास आया ।
महामा बोला, ‘यदि तेरे पग प्रेम-भाग से अनुरिचित हैं,
तो तू बला जा, प्रेम करना साँग और तब भर जानने का
कारण, यदि तू रुन की मुद्रा से मदिरा पान से डरता है,
तो तू आदर्श प्रेम की मन्त्रि का एक घँट भी नहीं पी सकता ।

किन्तु सावधान ! तू रुन में ही मत फँसा रह
बल्कि पूर्ण पग से पुल पार करने का प्रयत्न कर
यदि तू लक्ष्य तब अपना सामान समुद्रान उठा ले जाना चाहता है
तो तू अपने कदमों का पुल पर न लड़खलाने दे’ ।”

इससे न के इसका मायाथ इस प्रकार किया है —

“निनिष आत्माओं में दीरी औन्द्य के लक्षण देखता हुआ और
प्रत्येक आत्मा में दीरी गुणा को सत्कार में ग्रहण नियम दे । म पृथक्
करता हुआ, प्रेमी निर्मित आत्माओं के इस क्षान्त द्वारा धीरे धीरे नरम
औन्दर्प, ईश्वरीय प्रेम और ज्ञान की उपलब्धि करता है ।”

हृदयीय कहता है, ‘मनुष्य का इश्वर के प्रति प्रेम ऐसा दुर्लभ है
बा श्वर के प्रिय धनानुपाद्यों के हृदय में अन्ध और अनि चरण के रूप
में प्रकट होता है, बिगड़ परिणाम स्वयं यह करने स्थितियों का संतुष्ट
करना चाहता और उसका हृदय देगने की लालछा से अभीर पर आकुल
॥ जाता है । यह उसका सिवा अन्य किसी के साथ नहीं रह सकता
और उसका स्मरण से अनुरिचित ॥ जाता है तथा उसका अनुरिचित

प्रत्यक्ष चरु का स्पर्श सौम्य पूर्वक अस्वीकार कर देता है। उसने लिये आराम हराम हो जाता है और निद्रा उससे दूर भाग जाती है। यह समस्त आदतों और सम्बन्धों से वृथक् हो जाता है और निष्प्राणता का परित्याग कर देता है। यह प्रेम का दरबार भी और उन्मुक्त होकर प्रेम का कानून का आधिपत्य स्वीकार करता है तथा परमान्या को उसके पूर्णत्व के गुणों द्वारा जान लेता है।”

ऐसा मनुष्य अथवा ही अपने साथी मनुष्यों से प्रेम करेगा। वे उसके साथ बाड़े पैसी निर्दमता का व्यवहार करें, वह उनमें केवल परमात्मा के उन शुद्धिकारक कर्मों का ही दर्शन करेगा “जिनकी कद्र यादों भी आत्मा के लिये प्रति मधुर होती हैं।” शायसीद ने कहा है कि जब परमात्मा किसी मनुष्य को प्यार करता है तब वह उसके बिन्दु स्वरूप हीन गुण प्रदान करता है समुद्र के समान उदारता रूप का समान परदुःख कातरता तथा पृथ्वी का समान नम्रता। उसके प्रेमी का हृद् निरुग्रह तथा तीक्ष्ण अर्न्तर्गन्त के लिये षोडश भी काट अति महान् और षोडश भी मक्ति परम उच्च नहीं हो सकती।

इन्तुल अरबी यह दावा करता है कि इस्लाम मिलनशून्य से प्रेम का धर्म है, क्योंकि पैगम्बर मुहम्मद साहब को अल्लाह का प्रिय (हबीब) कहा गया है। तब, यद्यपि इस सिद्धान्त के कुछ खरब कृपण में मिलते हैं, इसकी मुख्य प्रवृत्ति निश्चयम्प से ईसाई धर्म से ग्रहण की गई। जब कि प्राचीनतम सूरी साहित्य जो अरबी में है और दुर्मान्यता हमें पण्डित अध्यात्म में दर्शन है कृपण में वर्णित अल्लाह से प्रेम मानने का आग्रह से प्रमाणित है, इसमें निपरीत ईसाई परम्परा का प्रत्यक्ष चिह्न भी मिलते हैं। जिस प्रकार दियोनीसियस एवं अन्य नाना अफलातूनी विचारधारा के लोगोंने द्वारा ईसाई धर्म में हुआ, उसी प्रकार और सम्भवतः उसी प्रभाव का अन्तर्गत इस्लाम में भी परमात्मा का प्रति मक्तिमय और रहस्यमय प्रेम हीम ही याह्याद और उन्हाह में विरहित हो गया। इसकी अभिव्यक्ति का लिय मानव प्रेम का मर्मस्पर्शी चित्रण ॥

सबसे अधिक सुगम और उपयुक्त माध्यम समझा गया। डाक्टर इड्डे का कथन है, “ऐसा प्रतीत होता है कि सृष्टियों ने शुद्ध एशियातियों की भाँति अपनी वासनाओं की दृष्टि को धर्मविधि-अनुमोदित और प्रतीकात्मक रूप देने का प्रयास किया है।” मुझे पुनः यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि सबसे सूक्ष्मतः के बारे में ऐसी धारणा द्विदली और गुलत, दाना है।

ज्ञान की भाँति प्रेम भी सर्वत्र एक दबी बरबान है यह कोई एसी वस्तु नहीं है जो प्राप्त की जा सके। “यदि सारे संसार के लोग भी प्रेम को आकर्षित करना चाहें तो नहीं कर सकते और यदि वे इसे हटाने का अत्यधिक प्रयास करें तो वे ऐसा नहीं कर सकते।” परमाना से नहीं प्रेम करते हैं किन्तु परमात्मा प्रेम करता है। बापज़ीद ने कहा, मैं समझता था कि मैं परमात्मा से प्रेम करता हूँ, किन्तु गौर करने पर मैंने देखा कि मेरे प्रेम करने के पहले से ही वह मुझसे प्रेम करता है।” पुनैद ने प्रेम को प्रेमी के गुणों के स्थान पर प्रियतम के गुणों का सम्बन्धन कहा है। दूसरे शब्दों में प्रेम का तात्पर्य व्यक्तिगत ‘अह’ का लोप हो जाना है। यह अनाथ हर्षोमाद तथा परमात्मा द्वारा मेरी गरुड है, जिसने लिए कठोर प्रार्थना तथा तीन इच्छा द्वारा प्रभाव करना चाहिए।

‘दे पुत्र, तेरे मुखावधार बलने में मेरा हृदय अभी गँद पड़ा है।

“यह कभी बाल बराबर भी तरे आदेश से निर्चलित नहीं हुआ और न ठहरे अरुण की।

“पानी गीन पर और गहावर मने अगना बाध कर सख्त पर मिला है।

“किन्तु, ए प्रदा, मेरा अन्तमन तपी ही जमानदारी है—तू ही हय निष्कलक रस।”

एक ठरदेशप्रद पक्षानी द्वारा ज्ञानाशुरीन यह शिवा देता है कि मनुष्य का प्रेम वास्तव में परमात्मा के प्रेम का प्रभाव है। एक

रात कोई मक उच्च स्वर से प्रार्थना कर रहा था। उसी समय शैतान उसक सम्मुख प्रकट हुआ और बोला—“तू ‘या अल्लाह, या अल्लाह’ क्या तक चिल्लाता रहेगा ! चुप हो जा, क्योंकि तुम्हें कोई उत्तर नहीं मिलेगा।” मक ने मौन होकर खिर भुका लिया। योसी ही देर बाद उसे पैगम्बर खिज़्र दिखाई पड़े। उन्होंने उससे कहा ‘अरे ! तूने अल्लाह को पुकारना बन्द क्यों कर दिया ?’ उसने उत्तर दिया, “इसलिए कि, ‘मैं यहाँ हूँ’, यह उत्तर मुझे नहीं मिला।” खिज़्र ने कहा, “अल्लाह ने मुझे आज्ञा दी है कि मैं तेरे पास आकर यह बतलाऊँ —

नै तुरा दकरीे मन आबुर्दह अम ।
 नै कि मन मशगूले बिकरत कर्ह अम ।
 गुस्त आँ अल्लाहे तो लम्बैके मास्त ।
 ई -यानो सोजे दर्दत पैके मास्त ।
 हील हायो चारह जूई हाय वो ।
 जज़बे मा बूदो कुशाद आँ पाय वो ।
 ससों इरके तो बमन्दे हुन्ने मास्त ।
 जेरे हर यारम्ब तो लम्बैक हास्त ।

—मोलाना रूमी (मसनवी)

“क्या तुम्हें सेवा हेतु आह्वान करने वाला मैं ही नहीं था !

क्या मैंने ही तुम्हें अपना नाम पुकारने में नहीं लगाया !

तेरा ‘या अल्लाह’ पुकारना मैं मर ‘मैं यहाँ हूँ’ उत्तर था,

तेरा उत्कृष्टप्रमय कष्ट ही मेरा तरे लिय दत्त था ।

तेरी एमस्त आहो, विनितियों और आँसुओं का

मैं ही आकर्षण केन्द्र था, मैंने ही उन्हें पञ्च प्रदान किया।”

दीवी प्रेम यथनातीत है, तमामि इसक लक्षण स्पष्ट होते हैं। सारी अल्-सबती ने सुनैद स प्रेम की प्रकृति व विषय में प्रश्न किया। उन्होंने उत्तर दिया, “कुछ लोग कहते हैं कि यह सयोगावरण है, कुछ कहते हैं यह परीवारा का सिद्धान्त है और कुछ कहते हैं कि यह अमुक-अमुक

प्रकार का है।" सारी ने अपने अग्रबाहु की चमड़ी पकड़ कर खींची, किन्तु तन सह न सका। तब उसने कहा, "मैं अल्लाह या ऐश्वर्य की सीमाय स्पर्श करता हूँ कि यदि मैं यह कहूँ कि इस हड्डी के ऊपर की यह चमड़ी परमात्मा से प्रेम में ही सिंकुट कर भुर्रीदार हो गयी है, तो मेरा कथन सत्य ही होगा।" तत्पश्चात् उस पर मूर्छा छा गयी और उसका चेहरा चन्द्रमा के समान कान्तिमय हो उठा।

स्वर्गीय रहस्यों का भाष-यन्त्र, प्रेम, अपने नाम को सार्थक करने वाले सभी धर्मों को अनुप्राणित करता है और उन्हें तर्क पूर्ण विश्वास का स्थान पर व्यक्तिगत सहज ज्ञान से उत्पन्न हृदय विश्वास प्रदान करता है। यह आन्तरिक प्रकाश स्वयं अपना प्रमाण है। जो इसे देख पाता है वही सच्चा ज्ञानी है और उसकी निश्चयात्मकता को कोई भी धातु घटा-बना नहीं सकती। इसी कारणवश सही सत उस धर्म की निरपेक्षता को प्रकट कर देने का भी नहीं शक्त, जो अपने को किसी प्रकार के बौद्धिक प्रमाणों, बाह्य अधिकारपूर्ण इच्छाओं, स्थाय अथवा स्थायमान पर स्थापित करता है। धर्मशास्त्री का सारहीन तर्कशास्त्र संस्कारों के रूप में बड़ बमाय कारिणी की वातपदपूर्ण सदाचारिता कुछ निम्न भेणी की किन्तु समान ही स्वार्थपूर्ण उपासना, जिसकी प्रेरणा इस जीवन के बादवाले जीवन में अनन्त आनन्द प्राप्त करने की इच्छा है उस रहस्यवादी की अवेद्याकृत शुद्ध भक्ति जो, यद्यपि परमात्मा से प्रेम करता है किन्तु अपने को प्रेम करने वाला सोचता है तथा जिसका हृदय पूर्ण रूप से 'परत्व' की भावना से रिक्त नहीं हुआ है—यह सब ऐसे आवरण हैं जिनको हटाना चाहिये।

परमात्मा को जानने वालों के कुछ कथन उद्धृत करना और अधिक व्याख्या करने की अपेक्षा अधिक शिक्षाप्रद होगा।

"हे सुदा ! इस संसार में तूने भरे लिए जो कुछ भाग लगाया है उस अपने शत्रुओं का प्रदान कर दे और दूसरी दुनिया में (स्वर्ग में)

१—यहूदी औपचारिकतावादी।

तूने मेरे लिये जो माग लगाया है उस अपने मित्रों को प्रदान कर दे। मेरे लिए तो तू ही शत्रु है।"—(राबिया)

"हे लुदा ! यदि मैं नरक के भय से तेरी उपासना करती हूँ तो तू मुझे नरक में जला और यदि मैं तेरी उपासना स्वर्गप्राप्ति की आशा से करती हूँ तो तू मुझे स्वर्ग से वञ्चित ही रख किन्तु यदि मैं तेरी उपासना फल तेरे ही लिए करती हूँ तो तू अपना चिर सौन्दर्य मुझसे दूर मत रख ।"—(राबिया)

‘ परमात्मा से प्रेमियों के अपने प्रेम द्वारा पृथक् किए जाने पर भी महत्पूज्य वस्तु उन्हीं के पास रहनी है क्योंकि चाहे वे सोते हों या जागते हों, वे खोसते हैं और खोजे जाते हैं और केवल अपनी ही खोज करने और प्रेम करने में व्यस्त न रह कर प्रियतम के बितन में उल्लसित रहते हैं। जब कोई प्रेमाश्रयी प्रियतम के समक्ष हो तो उसका अपने प्रेम का मान्यता देना अस्वाभाव है और अपने खोज काय को ही देखना प्रेम के साथ अत्याचार करना है ।”—(बायज़ीद)

“उत्तम प्रेम ने (भरे हृदय में) प्रवेश करके उसने अतिरिक्त सबको मिटा दिया और शेष किसी का कोई बिह्व नहीं छोड़ा। यहाँ तक कि जिस प्रकार यह अदृश है वैसे ही उसका प्रेम भी अकृता रह गया।”
—बायज़ीद

“एक क्षण के लिए भी परमात्मा के साथ एकमक होने का अनुमन करना उधार के आदि से अन्त तक के समस्त मनुष्यों के उपासना कार्यों से श्रेष्ठ है।
—शिखी

“प्रियतम से मिलन किय जाने के भय की तुलना में नरक की अग्नि का भय महान् समुद्र में जल की एक बुँद के समान है।”

—ज़ूलून

“जब तक मरा हृदय तेरी ओर उन्मुख न हो जाय
मैं प्राथना का प्राथना कहलाने योग्य नहीं समझता ।।”

यदि मैं अपना मुँह काबा की ओर फरता हूँ तो केवल तेरे प्रेम के कारण ।

अन्यथा मैं प्रार्थना और काबा दोनों से स्वतन्त्र हूँ ।”

—जलालुद्दीन रूमी

पुन, प्रेम आत्मा की देवी अन्तः प्रवृत्ति है, जो उसे अपना स्वभाव और अदृष्ट सम्झने को प्रवृत्त करती है । आत्मा इश्वर से उत्पन्न हुये लोगों में सर्वप्रथम है । फिर की सृष्टि के पूरे यह परमात्मा में ही स्थित और चलायमान थी और उसी में इसका अस्तित्व था । ससार में व्यक्त होने के काल में यह एक निष्पासित अजनबी है, जो सदैव अपने घर लौटने के लिये चिंतित रहता है ।

“प्रेम क्या है ! स्वर्ग की ओर उड़ना,

प्रत्येक क्षण सैफकों परदे फाड़ना,

प्रथम क्षण में जीना से वैराग्य धारण करना

अन्तिम क्षण में मिना पग के चलना

इस संसार को अश्व मानना,

अरने अह या प्रतीत होने वाले को न देगना ।”

एही वाक्य की सभी प्रेम वषायें और रूपक—लेना व मजनों, पुरुष व जुलुफा, सुलेमान व अम्बाल, शमा व परवाना (दीरक और पतल), गुल व बुलबुल की कहानियाँ—आत्मा की परमात्मा से पुनर्निर्माण की उत्कट अभिलाषा का छाया निर है । इस अभिनयित राजमहल के प्रत्येक कमरे में प्राची की समृद्ध पहनावा द्वारा सज्जित कोरा की एक चलती-फिरती भलक दिग्ग देने के अतिरिक्त, पाठकों का इस भाषा-की बगल में और अधिक बतलाना मेरे लिए असम्भव है । आत्मा की उरमा अपने साथी को गायक विभाव करने हुए चक्रवाक से उस नरपुल से जिस उसकी तलहटी से उगाड़ कर बाँसुरी बजायी गयी हा, जिसका वरुण संगीत आँखों में अभ्र ला देता है उस श्वन पत्नी से जिसे शिपारी ने छोटी बजाकर पुन अपनी कलाह पर बैठने के लिये बुलाया हा

उस वक से जो धूर में गन कर भाव के रू में आकाश की ओर उड़ता है उस उमत्त ऊँट से जो रात्रि में मरुभूमि से होकर बेग से भागता है, रिंजड़े में बंद तोते से, सूखी भूमि पर पड़ी मछली से तथा बादशाह बनने के लिये प्रयत्नशील प्यादे से दी जाती है ।

इन धलङ्कारों का भाव यह है कि परमात्मा को सर्वश्रेष्ठ माना गया है और आत्मा उसने पाव बिना उस मार्ग को ग्रहण किये नहीं पहुँच सकता जिसे प्लोमिनस ने “अग्नेय की अग्नेय के लिये उड़ान” कहा है । जलालुद्दीन रूमी कहता है —

“प्रत्येक अणु की गति अग्नेय उद्गम की ओर है

जो व्यक्ति जैसा होने पर मुन जाता है वैसा अवश्य होता है ।

सीम उत्कण्ठा और प्यार के आकर्षण द्वारा आत्मा और हृदय,

प्रियतम (परमात्मा) के गुणों को ग्रहण कर लेते हैं जो आत्माओं पर भी आत्मा है ।”

‘जो व्यक्ति जैसा होने पर मुन जाता है वैसा अवश्य होता है’ तो खूब कहा जाता है ! एकशार्ट ने अग्नेय एक भजन में सत आगस्टाइन पर यह पपन कि ‘मनुष्य जिसे प्रेम करता है वही हवा है’ उद्धृत करते हुए यह टीका लिखा है “यदि यह पपन स प्रेम करता है तो वह एक पपन है यदि वह मनुष्य स प्रेम करना है तो वह एक मनुष्य है यदि वह परमात्मा से प्रेम करना है तो—मैं आगे कहने का साहस नहीं कर सकता, क्योंकि यदि मैं कहूँ कि ‘ता वह परमात्मा है,’ तो आपलोग मुझे परवश से भोर डालेंगे ।”

सुवर्णमान रहस्यवादियों का अग्नेय ईसाई मनुष्यों की अग्नेय, तिनकी निम्न मनुष्यात्मन के धार्मिक स्व के प्रति भी बोधने की अधिक शक्त प्रता थी और यदि ये सामान्यजन कर जात थे तो आकाश (माषासिन्धु वरपा) की दलीन सामान्य पपन कहना मान ली जाती थी । चाहे ये एकदम होने के साथ या पहलू पर जार देत हो अथवा परमात्मा की

सबभेष्टता या अन्तरस्थता पर, उनकी अभिव्यक्तियाँ निर्भीक और दृढ़ हैं। अपू सद् ने इस प्रकार कहा है—

“मेरे हृदय में तेरा वास है, नहीं तो मैं इसे रक्त से तर कर दूँ
मेरी आँख में तेरी चमक है, नहीं तो मैं इसे आँसुओं से भर दूँ।
मेरी आत्मा की इच्छा केवल तुझमें मिलकर एक हो जाने की है,
अन्यथा, जैसे भी हो, मैं इस निचोड़ कर शरीर से बाहर धर दूँ।”

जलाशुरीन यह घोषित करता है कि आत्मा का परमात्मा के प्रति प्रेम परमात्मा का आत्मा के प्रति प्रेम है और आत्मा से प्रेम करने में परमात्मा स्वयं करने से प्रेम करता है, क्योंकि आत्मा में जो कुछ देवी सत्त्व है उसे यह अपने पास खींच लेता है। कवि कहता है “इस अपूर्व रसायन विद्या द्वारा हमारे ताँब का प्राकृतिक रूप ही बनल गया है,” अर्थात् यह रूपी मिलावट की खराब धातु शुद्ध और परिश्रित कर ली गई है। एक दूसरे गीत में यह कहता है—

“दे मेरे आत्मा, मैंने एक सिरे से दूसरे सिरे तक सोचा,
मैंने तुझमें सिवाय ‘प्रियतम’ से कुछ भी नहीं देखा।

दे मेरे आत्मा, तू मुझे वाशिर मन कर,
परि मैं यह कहूँ कि तू स्वयं ही ‘यह’ है।”

और अधिक सख्ती के साथ यह कहता है —

“तुम जो परमात्मा की लोभ में दीक रहे हो,
तुम्हें लोभ करने की जरूरत नहीं है, क्योंकि परमात्मा तुम्हीं हो।

उस धातु की तलाश क्यों करते ■ जो कभी लोभ नहीं थी ?

तुम्हारे अतिरिक्त कोई नहीं है, फलतः तुम्हीं हो, धरे ! वहाँ जा रहे हो !”

जब ‘प्रियतम’ ने स्वयं को प्रकट कर दिया तो प्रश्न वहाँ पर है !
कहीं भी नहीं और कब ? उसी व्यक्तिगत सत्ता का उगम में व लोभ हो
गया है। एकत्र (मिलन) के विवाह-मण्डप में परमात्मा आत्मा का गुण
विवाह रचाता है।

पञ्चम अध्याय

संत और चमत्कार

कहना कीजिये कि एक सामान्य मुसलमान शीमेजा। पढ़ सकता है और उसके हाथों में हमने 'सोसाइटी फार साइकिल रिसर्च' द्वारा प्रकाशित भेष्ट ग्रन्थों की एक प्रति रख दी है। ऐसे अवसर पर उसकी भावनाओं से सामञ्जस्य स्थापित करने के लिये हमें केवल यह सोचना है कि हमारी अपनी भावनायें क्या होंगी, यदि हमारा कोई वैज्ञानिक मित्र हमें एक ऐसे ग्रन्थ का अध्ययन करने के लिये आमन्त्रित करे जिसमें टेलीप्राप्ति के पक्ष में प्रमाण प्रस्तुत किये गये हैं तथा तार द्वारा समाचार भेजने के सुप्रमाणित उदाहरण उल्लिखित हैं। सम्भवतः मुसलमान तार में किसी प्रकार की आत्मा—'अप्रीत' या 'जिन'—का वास समझगा। मानसिक संचरण और इसी प्रकार की गुप्त प्रक्रियाओं को वह स्वयंसिद्ध तथ्य मान लेता है। यह उसका मस्तिष्क में जमी नहीं आयागा कि वह इनका अन्वेषण करे। उसकी मानसिक बनारस ही कुछ ऐसी है कि उसमें यह विचार प्रवेश ही नहीं कर सकता कि अलौकिक भी नियमबद्ध हो सकता है। वह एक अदृश्य जगत की वास्तविकता में, जो जगत् हमारे बचपन में ही नहीं धरन् सदैव और सर्वत्र हमारे चारों ओर छुपा रहता है, निरास रहता है क्योंकि वह निरवास करने का लाचार है। वह ऐसा जगत् है जिससे हम किसी भी प्रकार से बाहर नहीं हैं, जो सबकी पहुँच में और कुछ सीमा तक सब पर प्रकट होता है, यद्यपि उसके साथ स्वच्छन्द समागम करना बेयत्न थाइ ॥ लागो का निराशाधिहार है। अनेक धुलाये जाते हैं किन्तु कुछ ही चुने जाते हैं।

“आत्माओं को प्रत्येक रात्रि शरीर-भूमी जाल से
 दू स्वतंत्र करता है और मानस पटल को स्वच्छ बनाता है ।
 आत्माओं को प्रत्येक रात्रि इस निबन्ध से मुक्त कर दिया जाता है,
 ये स्वतंत्र होती हैं न वे शासक होती हैं और न शासित ।
 रात्रि में बन्दी बन्दीष्ट को भूल खाते हैं,
 रात्रि में राजा लोग अपनी अधिकार शक्ति को भूल खाते हैं ।
 हानि-हानि का कोई दुःख नहीं रहता, कोई गर्भीर चिन्ता नहीं
 रह जाती,

निश्चय या दूर किसी व्यक्ति का कोई विचार नहीं रह जाता ।
 कभी चापल्य अवस्था में भी इसी दशा में रहता है
 परमात्मा ने कहा है ‘जब वे सोने लगे, तब उन्हें जागता हुआ
 समझ ।’

परमात्मा के नियन्त्रणकारी कर में पड़ी लेखनी के समान,
 यह सत्कार के काय-व्यापारी के प्रति रात दिन उत्तरीन बना रहता
 है ।’

सृष्टियों ने सदस्य यह धारणा की है और उनका यह विश्वास रहा
 है कि वे परमात्मा के इन्तज्ज हैं । कुरान में अल्फाह के इन्तज्ज वनों पर
 और बाद स्थान पर संकट किया गया है । ‘किताब अल्-लुमा’ के १२
 निवा के अनुसार यह पदवी प्रथम वा पैगम्बर के लिये है जो अपनी
 निमागवा, अपने इल्हाम तथा अल्फाह के काय को ही अपना जीवन
 सदा बना लेने के गुण के कारण इस प्राप्त करते हैं । दूसरे यह पदवी
 उन कुछ मुसलमानों के लिये है जो अपनी सच्ची भक्ति, इन्द्रिय-दमन
 तथा अनन्त सत्य के साथ हरे सम्बन्ध के गुण के कारण अल्फाह के
 हरे प्राप्त होते हैं । मिर्हे इन एक शब्द में ‘सन्त’ कह सकते हैं । जब
 कि धर्मगुरु मुस्लिम समाज के पुनर्दुःख लागे हैं सन्तगुरु मुस्लिमों के
 पुनर्दुःख लोग हैं ।

१—य तदस्मि मुहम्मद एजाजम् व हुम रफू । —कुरान १८ १७

मुसलमान सन्त को साधारणतय 'बली' कहा जाता है। इसका बहु वचन 'ओलिया' है। यह शब्द अपने मूल अर्थ 'समीपता' से निकले विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होता है, जैसे 'स्वीकृत', 'सरपरस्त', 'हाकिम', 'हबीब'। कुरान में इसका प्रयोग अल्लाह के लिये निष्ठावान् व्यक्तियों के रत्न के रूप में देवदूतों (परिश्तो) और मूर्तियों के लिये, जो अपने उपासकों के रत्न माने जाते हैं, तथा उन मनुष्यों के लिये, जो मुख्यतः दैवी संरक्षण में रहते हैं, हुआ है। मुहम्मद साहब ने यहूदियों को अपने को 'ओलिया लिल्लाह' (परमात्मा पर आभित) कहने वाले कहकर ताना दिया है। इस शब्द के कुछ-कुछ सन्दिग्धार्थक होते हुये भी यह सूक्तियों द्वारा ग्रहण कर लिया गया और उन व्यक्तियों की सामान्य पदवी हो गया, जिन्हें उनकी पवित्रता परमात्मा के समीप पहुँचा देती है तथा जो 'उसकी' विशेष कृपा के चिह्नस्वरूप 'उससे' समस्तकारपूर्ण वरदान (कय मात) पाते हैं। वे परमात्मा के मित्र हो जाते हैं। "जिन पर कोई कष्ट नहीं आयेगा और जिन्हें कोई कष्ट नहीं होगा।" उनको कोई कष्ट पहुँचाना परमात्मा के विरुद्ध शत्रुता का आचरण करना है।

मुस्लिम सन्तों की प्रेरणा यद्यपि शब्दतः पैगम्बरों की प्रेरणा से भिन्न तथा उससे निम्न भेदी भी मानी जाती है, तथापि यह विलुप्त उसी प्रकार की होती है। उनके परमात्मा से निवृत्ततम सम्बन्ध के परिणाम स्वरूप अलीपिच की, अथवा मुसलमानों के कथनानुसार अदरय जगद् की, आच्छादित करने वाला पर्दा समय-समय उनकी दृष्टि के सामने से हट जाता है और अपने आह्वान के दौरे में वे पैगम्बरी स्तर तक पहुँच जाते हैं। मुसलमान सन्त के लिये न तो आध्यात्मिक वृत्तों का गहन अभ्यसन आवश्यक है और न अच्छे कर्मों में निरत रहना अथवा तपस्या या नैतिक सत्ताचारिता। उसमें यह सब पातें हो सकती हैं अथवा कोई एक भी नहीं हो सकती किन्तु उसके लिये एकमात्र परमावश्यक

१—अल्लिमा अल्लाहि ला यीरुन अल्लिहि यलाहुम् यहजजून। —कुरान (१० ६३)

योग्यता आह्लाद और उल्लास है जो जागतिक 'अह' से जना हो जाने का वास्तविक लक्षण है। जो भी इस तरह से 'मजज्ज' (उल्लसित) हो जाय वही 'वली' है और जब ऐसे व्यक्तियों को उनकी समतुल्यता दिखाने की शक्ति का कारण मान्यता प्राप्त होती है वे सन्त रूप में अपनी मृत्यु के परचाह ही नहीं बरन् अपने जीवन काल में भी पूजे जाने लगते हैं। पशुपा वे अमकट दशा में ही रहते और मरते हैं। हुजरी ने कहा है कि सन्तों में "चार हजार ऐसे हैं जो गुप्त रहते हैं और एक-दूसरे को नहीं जानते और न जिन्हें अपनी भेष्ठ अवस्था का ही पता रहता है, क्योंकि सभी परिस्थितियों में वे अपने आपसे सदा मनुष्यों की दृष्टि से छिप रहते हैं।"

सन्तों की एक अदृश्य शासनसभा होती है। उसी पर सत्कार की व्यवस्था का भार होना ग्याल किया जाता है। इसका सर्वोच्च अधिकारी को 'कुत' (गुरी) की पदवी दी जाती है। वह अपने समय का सच भेष्ठ सन्त होता है और इस महती सभा द्वारा बराबर की जाने वाली बैठकों का सम्पादन करता है। इसका सदस्यों को उपस्थित होने में समय और स्थान की दूरी की अनुविधाननक धरनाये कोई बाधा नहीं पहुँचाती, बरन् ये निमिषमान में पृथ्वी के समस्त भागों से समुद्रों पर्यंत तथा रेगिस्तानों को उसी सुगमता से पार करते हुये, जिस प्रकार साधारण मत्स्य (मनुष्य) समुद्र को पार करते हैं, एकत्रित हो जाते हैं। 'कुत' का नीचे पवित्रतानुसार विभिन्न वर्ग और भेदिया होती हैं। हुजरी ने उन्हें ऊपर वर्त हुये क्रम से निम्नलिखित ढंग से गिनाया है — तीन मौ 'अल्लार' (नेक लोग), चालिस 'अन्नाल', (एकत्री प्रतिनिधि), साठ 'अबबार' (पवित्र आचरण वाले), चार 'औताद', (सुम्ह) और तीन मुकना (पर्यवेक्षक)।

"ये सब एक-दूसरे को जानते हैं और बिना आपस में बात किये कोई काम नहीं कर सकते। 'औताद' का यह कर्त्तव्य होता है कि यह प्रत्येक रात सम्पूर्ण जगत का परस्पर लगा आता है। अगर किसी स्थान

पर उसकी दृष्टि नहीं पड़ी तो दूसरे दिन उस स्थान पर कोई-न कोई गद बड़ी अवश्य दिखाई पड़ेगी। तब उन्हें इसकी सूचना 'कुत्त' को देनी पड़ती है ताकि वह उधर अपना ध्यान देकर उस त्रुटिपूर्ण जगह की अपूर्णता (गड़बड़ी) को अपनी दुआ के द्वारा ठीक कर दें।”

इस पुस्तक में हम मुसलमान के व्यक्तिगत रहस्यवादी जीवन का अध्ययन कर रहे हैं और यह आवश्यक है कि इस विषय को संकुचित सीमाओं के भीतर रक्खा जाय। अन्यथा मैं यह अधिक पसन्द करता कि सम्प्रदाय के बाह्य और ऐतिहासिक संगठन को निवेचना सन्तों के एक सम्प्रदाय के रूप में की जाय तथा विफ़ास की उस प्रक्रिया का वर्णन किया जाय जिसके द्वारा एक छोटी-सी मित्र-मंडली से निजी तौर पर मार्गालाप करने वाला 'गली' पहले अपने जीवन काल में अपने चारों ओर शिष्यों को बटोर कर शिष्य और आध्यात्मिक गुरु बना और अन्त में एक स्थायी धार्मिक सम्प्रदाय का प्रधान बन गया, जिस पर उसका नाम की मुहर अंकित है। इन महान् समागमों का प्राचीनतम रूप ब्राह्मणी शाताब्दी से मिलने लगता है। प्रत्येक सम्प्रदाय में अपने निजी सन्तों—तथाकथित दरवेशों—का अतिरिक्त उससे सम्बद्ध दीक्षित गृहस्थ बहुत बड़ी संख्या में होते हैं, यहाँ तक कि उनका प्रभाव मुस्लिम समाज के सभी वर्गों पर पड़ता है। ‘ये सम्प्रदाय स्वतंत्र और स्व विनियमित होते हैं। उनमें आपस में प्रतिद्वन्द्विता होती है किन्तु कोई किसी दूसरे पर शासन नहीं करता। प्रत्येक सम्प्रदाय विद्रोह और अत्यास में अपनी ही पद्धति का अनुसरण करता है, जो केवल इस्लाम के निरन्तरानी अन्तर्मिषेक द्वारा सीमित होते हैं। इस प्रकार विलक्षण सिद्धान्त और मर्याद नैतिक परम्परा पंदा हो जाती हैं, किन्तु स्वतंत्रता पच जाती है। यह निश्चय है कि आन्तर्गमूत ‘गली’ किसी धर्म की स्थापना नहीं कर सकता, किन्तु इस्लाम ने इसाई धर्म की अपेक्षा अधिक बार ऐसे व्यक्तिों को जन्म दिया है जिन्होंने तीन आध्यात्मिक ज्योति को निरन्तर सचि तथा सामाजिक जागृ में अभिमुखि से बहुत बड़े पैमाने पर

जोड़ दिया है। मुसलमानों के इस विचार ने, कि सन्त परमात्मा द्वारा अधिकृत व्यक्ति होता है, 'सन्त' शब्द का प्रयोग को बहुत व्यापक बना दिया है। इसका प्रयोग इतना व्यापक है कि अल्लाहुद्दीन रुमी तथा इब्न अरबी जैसे महान् सूफी ग्रन्थकारों से लेकर बवल मानसिक सन्तुलन ग्लोस्टर पवित्रता प्राप्त करने वाले मृगी और गिस्तारिया के रागी, अन्न विद्धि, कम समझ तथा अनार शानार बकने वाले पगले तक सभी इसी काटि में आ गये हैं।

कृषीरी और हुचरीरी दोनों ने इस प्रश्न की कि क्या सन्त का धरने सन्तत्य का पता हो सकता है, निवेचना का है और हामी भर कर उत्तर दिया है। उनका निराश्रयों का तर्क है कि सन्तत्य की चेष्टना में नाश्त (नवात) प्राप्त करने का विरगास नीहित है, जो असम्भव है, क्योंकि यदि मा निश्चयपूर्वक यह नहीं जान सकता कि वह कृपामन का दिन सुरक्षित लागो का मध्य में होगा। इसका उत्तर में यह तर प्रस्तुत किया जाता है कि परमात्मा सन्त का समत्वपर पूरा दग से उसके पूर निरिबन मोक्ष का विश्वास निला सकता है और साथ ही साथ 'वह' नम आगतिनिक पूणता की दशा में बनाय रहता है तथा उस धरणा से बचाता है। पैगम्बर की मति सब निश्चयक नहीं होता किन्तु उसे प्राप्त देवी सरक्षण इस बात का पक्का सम्यक् है कि यह बुरे कार्यों में नहीं लिप्त हो सकता, यथार्थ अस्पायी रूप से वह धरने मार्ग से च्युत हो सकता है। सामान्य दृष्टिकोण का अनुसार सन्तत्य विरगास पर निर्भर है, न कि आचरस पर; यहाँ तक कि विरास 'इम' (नाम्निष्ठता) का अन्य बिना पाप का कारण यह पद छीना नहीं जा सकता। इस गवतनाक सिद्धान्त को, जो अधिधर विरासता का नियम द्वारा सुजा छान देता है, 'शरय' (धार्मिक नियम) का वाक्यी पर जोर दकर सन्त किया गया। वायनीद अल-विद्यानी की निम्नलिखित कहानी से सभी बड़े सूफियों के, जो मुसलमानों को धर्म दायों में अधि

कारी विद्वानों के रूप में उद्भूत किये गये हैं, परम्परागत दृष्टिकोण का पता चलता है।

उसने कहा है, 'मुझे बतलाया गया कि परमात्मा का एक सन्त अमुक नगर में रहता है और मैं उससे मिलने के लिये चल पड़ा। जब मैंने भरिजद में प्रवेश किया, वह अपने कमरे से बाहर निकला और उसने प्रार्थना पर झुक दिया। मैं बिना उसको सलाम किये ही जोरन लौट पड़ा, मन में यह कहता हुआ कि सन्त को धार्मिक नियम की पाबंदी अत्यन्त करनी चाहिये ताकि परमात्मा उसकी आध्यात्मिक शक्ति को बनाये रखे। यदि वह व्यक्ति सन्त होता तो 'शरीअत' के प्रति उसका आदर उसे प्रार्थना पर झुकने से अवश्य रोकता अथवा परमात्मा ही उसको उसे प्रदान की गई शक्ति को दूषित करने से बचाता।'

जो भी हो बहुत से 'वली' 'शरीअत' को एक अवरोध मानते हैं। यह उस समय तब तो निरान्त आश्चर्यक है जब तक कोई अनुयायन 'मक़ामात' में रहता है निरुद्ध इसका सन्त द्वारा परित्याग किया जा सकता है। उनकी घोषणा है कि ऐसा व्यक्ति साधारण मनुष्यों की अपेक्षा अधिक ऊँचे स्तर पर होता है और उसे उन कार्यों के कारण अपराधी न ठहराना चाहिये जो वास्तव रूप से अधार्मिक प्रतीत होते हैं। जब कि पुराने एही इस पाठ पर जोर देते हैं कि नियम मंग करने वाला 'वली' पातयही होता है, जन साधारण की सन्तों में भ्रष्टा और सन्त-उपासना की सीध प्रगति ने 'वली' का एक नियम के ऊपर तक बढ़ा दिया और इस विश्वास को पुष्ट किया कि देवी वरदान प्राप्त मनुष्य कोई गलती नहीं कर सकता अथवा कम से कम उसका कार्यों पर उनके वास्तव रूप द्वारा ही निर्णय नहीं दिया जा सकता। परमात्मा के मित्रों में निहित इस देवी अधिकार का प्रसिद्ध उदाहरण मूला और निम्न—क़ुरान में एका १८ आयत ६४ से ८० तक में वर्णित है। निम्न—क़ुरान में उनका वग़ुन नाम केवल नहीं दिया गया है—“एक रहस्यमय सन्त है जिन्हें अनन्त का वरदान प्राप्त है। कहा जाता है कि य धूमने करने वाले

सक्रियो से मिलकर बातचीत करते हैं तथा उन्हें अपना ईश्वर प्रदत्त शान सुनाते हैं। मूसा ने एक यात्रा में उनके साथ चलने की इच्छा प्रकट की ताकि वह उनकी शिक्षाओं से लाभ उठा सकें। विग्र ने जबल इस शर्त पर स्वीकृति दी कि मूसा उनसे कोई प्रश्न नहीं पूछेगा।

एन वलका हुआ इन्ना रकिवा त्रिस्त्रीनति परकहा काल
अप्रकृष्टहा लिपुगुरिक अहलहा लकृदबित राईअन इन्ना
काल अलम् अकृत्लक इन्नक लन् सस्ततीअ मइय सपरा।
एनवलका हुआ इन्ना लक्रिया गुलामन प्रकृवलहू काल अकृत्ल
नफसन ज़रीयतम त्रिगरे नफस लकृद त्रितीश्वन नुबण।

“इस प्रकार वे चलते गये। फिर वे एक नाव में बैठे और उन्होंने (विग्र ने) नाव में छेद कर दिया। मूसा चिल्ला उठा, ‘मह तूने क्या किया! क्या तूने इसमें इसलिये छेद कर दिया है कि इसके मल्लाह! को हुवा दे! सचमुच तूने बड़ा विचित्र कार्य किया है!’

‘उसने उत्तर दिया, ‘क्या मैंने तुमसे नहीं कह दिया था कि तू मेरे साथ किसी भी प्रकार से धैर्य न धारण कर सकेगा’।”

“फिर वे बढ़ते गये और उनकी मँट एक नौजवान से हुई। उसने (विग्र ने) उसे मार डाला। मूसा बोल उठा, ‘तूने उसे, जो हत्या के अपराध से बरी है, क्यों मार डाला! निश्चय ही तूने अपनी बार ऐसा कार्य किया है जैसा कभी नहीं सुना गया’।”

जब मूसा ने अपनी मौन रहने की प्रतिज्ञा तीसरी बार भी ताड़ दी तो विग्र ने उसे छोड़ देने का हृद निश्चय कर लिया।

सठनचिठक मितावीलि मालम सस्तवि अनीहि सपरा।
अम्मस सज़ीनहु फकानत लिमसाधीन यामलून त्रिस्तदरि
प्रप्रसु अन्न अईषहा यकान यराअहुम मलिबुई यादुहु
मुत्त सज़ीनतिन गुत्वा। य अम्मल गुलामु फकान अषगाहु
मुमिनेने फकरीना और मुदिहुमा त्रिग्यानों य फुररा।

उमने कहा, “किन्तु पहले मैं तुम्हें उन कार्यों का अर्थ बतला दूंगा जिन्हें देखकर तू धैर्य नहीं रख सका। जहाँ तक नौका का सम्बन्ध है यह समुद्र में परिश्रम करने वाले गरीब आदमियों की थी और मुझे उसमें छेद करने का विचार इस वास्ते आया कि उनके पीछे एक राजा आ रहा था जो प्रत्येक अन्धरी नाव को जबरदस्ती अपने लिए पकड़ लेता था। मैंने युवक को इसलिये मारा कि उसके माता पिता धार्मिक थे और मुझे यह भय हुआ कि कहीं वह अपनी अधार्मिकता और गलती से उन्हें बच न पहुँचावे।”

सूत्रियों को इस अकाद्य साध्य का उद्धार देना अधिक प्रिय है कि ‘बली मानवीय आलोचना से ऊपर होता है और बलालुदीन के कथनानुसार, उसका हाम परमात्मा का हाथ होता है। अधिपत्य मुसलमान इस कथन की अस्वरूपता को स्वीकार करते हैं क्योंकि वे नैति कता का रुढ़ मापदण्ड को उन पर लागू करने से भिन्न करते हैं।

किसी सन्त द्वारा दिसलाय गये चमत्कार को ‘क़यमत’ कहते हैं अर्थात् यह उसको परमात्मा द्वारा प्रदत्त ‘इश’ है, जब कि पैगम्बर द्वारा मिलाने गये चमत्कार को ‘मुअज़िज़ा’ नाम दिया जाता है, अर्थात् ऐसा कार्य जिसकी कोई भी नक़ल नहीं कर सकता। इस मिलता का अम मतभेद के कारण हुआ और इसका प्रयोग उन लोगों को उत्तर देने के लिये किया गया जो सन्तों की चमत्कारिक शक्तियों को पैगम्बर के असाधारण निरोपधिष्णर का भारी अतिक्रमण मानते थे। सूफ़ी सम्प्रदायियों ने, इस बात का स्वीकार करने हुए भी कि दोनों प्रकार के चमत्कार पशुव एक हैं अतःपूर्वक दोनों की विशयताओं में भेद का स्थापना है। वे यह भी कहते हैं कि सन्त पैगम्बर के सत्सी होते हैं और उनके समस्त चमत्कार, मनु से मरे चर्मपाश से उनके बूद की भाँति, याम्बु में पैगम्बर से ही उन्हें प्राप्त होते हैं। यह दृष्टिकोण मनातन पथियों का है और इसका समर्थन वे मुसलमान गर्मी करते हैं जो ‘क़ाज़ू’ और ‘हज़ीज़त’ (नियम और सत्य) दोनों को स्वीकार करने हैं, यद्यपि

इन्द्र दयाग्री में यह एक पवित्र शर से रूढ़ कर नहीं है। हनुने बहुतों को देना है कि किस प्रकार सूरीगण इस्लाम के साथ तर्कपूर्ण सान्द्रित स्थिति करने का प्रयत्न करते समय अपने को कठिनाई में अनुभव करते हैं। प्राचीन धर्म के यूरोपीय विद्यार्थियों के लिए बुद्धिमानता का प्रारम्भ यह शब्द करने में है कि बनल विश्वास—मेरा वास्तव ऐसा विश्वासों से है बिना हनाय मन सामान्य नहीं स्थापित कर सकता—प्राचीन-वाधियों के मन्त्रिक म एक दूसरे के साथ शांतिपूर्वक बने रहते हैं और उनमें बननरन की चेतना उनके मालिक को मिल्कुल ही नहीं होती। फिर भी निपनानुसार यह पूर्ण रूप से सच्चा होता है। ये निपरीत वचन जो हम बहुत स्पष्ट प्रतीत होते हैं, उसे तनिक भी परेशान नहीं करते।

प्राचीन सूरीमत में चमरकारिक तत्त्व इतना महत्वपूर्ण नहीं था जितना यह बाद में दरयेय सम्प्रदायों से सम्बद्ध पूर्ण विशिष्ट उत उठा गया में हो गया। कुरीरी का कथन है कि “यह सन्त-सन्त ही नहीं है जो इस संसार में चमत्कार न दिखला सके। प्रारम्भिक सुखलमा परिज्ञानाग्री के बीरन में यह कथन सामान्य रूप से मिलता है कि चमत्कारिक शक्तियाँ अपवादित कम महत्त्व की हैं। यह इस्लाम अरबों ने बहुत सुन्दर कहा है कि सबसे बड़ा चमत्कार दुगुणों के बदले सुगुणों को प्राप्त करना है। ‘किताब अल-कुमा’ में ऐसा मतों के बहुत से उदाहरण दिए गए हैं जिन्होंने चमत्कारों से पूर्णता किया तथा उन्हें प्रतीति माना। बापतों का कहना था कि “मरी साधना की भी प्रारम्भिक अवस्था में परमात्मा मेरे समक्ष बहुत ही अद्भुत कार्य और चमत्कार लाया करता था किन्तु मैंने उनकी ओर बाद ध्यान नहीं दिया। जब उगो देना कि मैं ऐसा करता हूँ तो उगो मुझे यह गारा दिया कि मैं उससे सम्बन्ध में जान प्राप्त कर सकूँ।” गौद का कहना था कि चमत्कारों पर निर्भर करना उन पदों में से एक पदों है जो भगवान् गण रूपी मन्दिर के अन्तर्गत भगवान् प्रथम करने में शक्य हैं। गुलगाती के विद्यालय के गुरुदास के शिष्य गुरु विद्यालय बहुत भारी कहा जाता था,

तथा शपाओं को बड़ी दुर्नियार अन्त प्रवृत्ति बहा ले गई जिसने मुहम्मद साहब के शपथ पूर्वक कहे गये वचनों को, कि उनमें कोई भी बात असली विक्र नहीं थी व्यर्थ बना दिया तथा जिसने ऐतिहासिक मानव पैगम्बर को एक सर्वशक्तिशाली गुप्त रहस्यों के व्याख्याता तथा बादूगर में रूपान्तरित कर दिया। चमत्कारों के लिए जन साधारण की माँग पूर्ति से कहीं अधिक बल गढ़ किन्तु जहाँ पर यत्नीयता असफल हुए वहीं एक स्पष्ट और सहज ही विश्वास करने योग्य करुणा ने उनकी रक्षा की और उन्हें उस रूप में नहीं, जैसे कि वे थे, बल्कि उस रूप में, जैसा कि उन्हें होना चाहिये प्रदर्शित किया। प्रति वर्ष 'सन्तों की गाथा' अधिक-अधिक ऐश्वर्यपूर्ण तथा आश्चर्यजनक होती गई क्योंकि इसे प्राप्य करुणा के अथाह महासागर से सदैव ताज़ी सहायता मिलती रही। 'बलियों' द्वारा अथवा उनकी ओर से किये गये दावे लगातार बढ़ते गये और उनके बारे में कहीं गई कहानियाँ निरन्तर अधिक-अधिक बढ़ती तथा मुक्तमुक्त होती गई। इस अध्याय के शेष भाग में मैं इस विषय पर उल्लेख विशाल मध्य कालीन साहित्य में वर्णित कली के रूप का एक रेखाचित्र खींचने का प्रयास करूँगा।

सुसलमान सन्त यह नहीं कहता कि उसने कोई चमत्कार दिसलाया है वह कहता है, "चमत्कार मुझे प्रदान या मुझ पर प्रकट किया गया।" एक दृष्टिकोण से अनुसार यह चमत्कार के समय पूर्णरूप से चैतन्य हो सकता है, किन्तु बहुत से सूत्रियाँ का विचार है कि ऐसा प्रकटीकरण सिवाय आह्वान (मायाविष्टावस्था) के, जब कि सन्त पूर्ण रूप से दैवी नियन्त्रण में होता है, अन्य किसी अवस्था में नहीं हो सकता है। उस समय उसका निजी व्यक्तित्व क्षणिक विराम में होता है और जो लोग उसमें हस्तक्षेप करते हैं वे उस सर्वशक्तिमान् सत्ता का विरोध करते हैं जो उनके आत्मा से बोलती तथा उनके हाथों से मारती है। जनालुद्दीन ने, जो कमी-कमी किंगी पथी द्वारा करीभूत किसी मनुष्य की दो अथवा माली उरमा का प्रयोग करता है, प्रसिद्ध शरही सन्त बायज़ीद बिस्तामी के बारे

बिन्दुके परिणाम स्वरूप सन्तत्व के बारे में अशिष्ट भावों की रहस्यवादी और कमशास्त्र सम्मत विचारों पर विजय हुई। ऐसी समस्त चेतनावनियों में बिन्दुने आह्लाद पूर्ण उन्माद में कई बार यह घोषित किया कि वह तुदा के सिवाय अन्य कुछ भी नहीं है, निम्नलिखित घटना बयान किया है।

एक ऐसे अवसर पर अपनी चेतना पुन प्राप्त करने पर श्रीर मह बान कर कि उसने बेसी ईश्वर निन्दक भाषा का उच्चारण किया है, बापसीद ने अपने शिष्यों को आदेश दिया कि यदि वह फिर ऐसी गलती करे तो वह उस द्वारा भाव दें। इसका परिणाम क्या हुआ—यह मैं भी झिंझोल्ह द्वारा बिये गये 'मरुनवी' के सचित्त अनुवाद से उद्धृत करूँगा (पृष्ठ १६६)।

“उन्माद थी बेगवती घाय उसका बियेक बहा ले गई
और वह बोला पहले की अपेक्षा अधिक अपरिपक्वा से
मरे परिपान में सिवाय परमात्मा के कुछ भी नहीं है,
तुम बाहे 'उस' स्वर्ग में लोत्रो या पृष्ठी पर।’

समस्त शिष्य उसके, भय से पागल हो उठे
और उसके पवित्र शरीर पर छुरों से बार करने लग।

बिन्दुने भी शत्रु की देह पर बार खाया

उसका बार पलट कर मारन वाले को ही घायल कर गया।

उस दिव्य शक्ति वाले पुरुष पर किसी छोट का प्रयास न पड़ा,

किन्तु शिष्यगण घायल होकर रक्त से लथपथ हो गये।”

कवि ने अन्तर्ना निष्पन्न इस प्रश्नर दिया है :—

“धरे ! तुम जो उस, जो अन्तर्ना में नहीं है, अपनी तलवार से
मारत हो

तुम स्वयं उस तलवार से अपने का मारत हो सारना !

करीब जा अ ने में नहीं है यह नष्ट होकर मुरझिंद

और वह सदैव मुरझा में ही रहता है।

उसका अन्तर्ना रूप मिट चुका है, वह तो दण्ड मात्र है

उसमें सिखाय दूसरे के प्रतिबिम्ब के कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता ।
 यदि तुम उस पर झुकने हो तो तुम अपने ही मुँह पर झुकते हो,
 यदि तुम दर्पण को मारते हो तो तुम स्वयं को ही मारते हो ।
 यदि तुम यहाँ 'इसा' को देखते हो, तो तुम उसकी माता 'मेरी' हो ।
 यदि तुम्हें उसमें कोई भद्रा चेहरा दिखाई पड़े तो वह तुम्हारा ही है ।
 वह न वह है न वह है—वह आकार से परे है

तुम्हारा अपना ही रूप तुम्हारे समक्ष प्रतिबिम्बित होता है ।”

एक दूसरे फारसी सूफी अबुल्हसन खुर्रजानी की जीवनी, जिसकी मृत्यु सन् १३३ ई. में हुई, हमारे समक्ष एक प्राच्य निश्वात्मवादी का पूर्ण चित्र प्रस्तुत करती है और चरित्र में मिश्रित उच्छ्रितता तथा अस्मिमान को यथेष्ट श्रद्धा का साथ प्रदर्शित करती है । चूँकि मूल पाठ पचास पृष्ठों में है, मैं उसका एक अल्पांश का ही यहाँ पर अनुराद कर सकता हूँ ।

“एक बार शेर ने कहा ‘आज रात में बहुत से आदमी (उन्होंने टीरु-टीरु सत्या बतलाई) अमुक मरुभूमि में डाकुआं द्वारा घायल कर लिये गये हैं ।’ जाँच करने पर ज्ञात हुआ कि उनका फथन पूरा रूप से खत्म था । आश्चर्य की बात यह है कि उसी रात में उनके लड़के का सिर काट कर उनके घर के चौलट पर लटका दिया गया किन्तु उन्हें कुछ भी पता न चला । उनकी स्त्री ने, जो उनमें अविश्वास करती थी, रो कर उनसे पूछा, ‘उस आदमी के बारे में क्या समझा जाय जा मौलो दूर पड़ित बातों का तो बतना सकता है किन्तु यह नहीं जानता कि रात उसने लड़के का सिर काटकर उसी के दरवाजे पर लटका दिया गया है !’ शेर ने उत्तर दिया, ‘हाँ जब मैंने पहली घटना देखी उस समय ‘हिजान (पर्दा) दूर हो गया था किन्तु जब मेरा लड़का मारा गया तब पर्दा फिर गिर चुका था’ ।”

“एक दिन अबुल्हसन खुर्रजानी ने मुझे बाँध कर और अपनी कनिष्ठा छेगुली आग बनाकर कहा, ‘यदि कोई सूझी जाना चाहता है तो ‘किबला’ यहाँ है (किबला उस स्थान को कहते हैं जिसकी ओर मुँह

करके मुसल्मान लोग नमाज पढ़ते हैं अर्थात् 'काबा') । इन शब्दों की सूचना महान् शेर को दी गई जिहोने दो 'क्रिबलाओं' का सह अस्तित्व देवी एकत्व का अपमान समझ कर यह घोषित किया, 'अब चूंकि एक दूसरा 'क्रिबला' प्रकट हो गया है मैं पहले 'क्रिबला' को मसख करता हूँ।' उसके पश्चात् कोई भी यात्री मक्का नहीं पहुँच पाता था। कुछ रास्ते में ही मर जात था और कुछ छुट्टों के हाथ में पड़ जात था अथवा विभिन्न कारणों से यात्रा पूर्ण करने में बाधित रह जाते थे। दूसरे वष किसी दरवेश ने महान् शेर से कहा 'लोगों का अल्ताह के घर (काबा) से दूर रहने में क्या रुक है?' तब महान् शेर ने एक इशारा किया और सड़क एक बार पुनः खुल गई। दरवेश ने पूछा, 'किस प्रकार से इन सब मनुष्यों की जानें गईं?' महान् शेर ने उत्तर दिया 'जब हाथी एक दूसरे से घबराह घबरा करते हैं तो पत्ति कुछ छुट्ट पड़ी कुचल कर मर जायें ता वीन उसकी दरवाह करता है'।"

"कुछ आदमी एक यात्रा पर जान वाले थे। उन्होंने शूरजानी से मार्गना किया कि वे उन्हें ऐसी मार्गना बता दें जिससे वे मार्ग में आनेवाली विपत्तियों से अपनी रक्षा कर सकें। शूरजानी ने कहा, 'तुन लोगों पर अगर कोई विपत्ति आ पड़े तो मेरा नाम ले लना।' इस उत्तर से उन लोगों को सताव नहीं हुआ फिर भी वे अपनी यात्रा पर चल पड़े। रास्ते में छुट्टों ने उन पर आक्रमण किया। उस दल में से एक नन्द (शूरजानी) का नाम लिया और शूरजानी ही अन्त्य हो गया। छुट्टों का वक्ता आश्चर्य हुआ कि उन्हें न तो उसका सँट ही दिखाई पड़ा और न उसके सामान की गति ही। दूसरे लोगों के सब सामान और यत्न छुट गये। पर लौटने पर उन्होंने शेर (शूरजानी) को इशारा रहस्य जानाना कहा। उन लोगों ने कहा 'हम सब लोगों ने अल्ताह का नाम लिया था किन्तु वह व्यर्थ सिद्ध हुआ किन्तु एक व्यक्ति ने तुम्हारा नाम लिया और वह छुट्टों की छाँवों के सामन से अन्त्य हो गया।' शेर ने कहा, 'तुन लोग अल्ताह को नाम के लिये पुकारत हो जब कि

मैं 'उसे' वास्तव में पुकारता हूँ । इसलिये जब तुम मुझे पुकारते ॥ तो मैं तुम्हारी तरफ से परमात्मा को पुकारता हूँ और तुम्हारी प्रार्थनायें मंजीवार हो जाती हैं किन्तु तुम्हारा अल्नाह को नाम मर के लिये रट लगाना बिल्कुल 'यथ है' ।"

"एक रात जब वह प्रार्थना कर रहा था उसने एक आवाज उसे पुकारते हुये सुनी, 'ये अल्लुहसन ! क्या तू चाहता है कि 'मैं' लोगों का यह बतला दूँ कि 'मैं' तरे बारे में क्या जानता हूँ ताकि लोग तुम्हें पत्थर मार मार कर मार डालें !' उसने उत्तर दिया, 'हे प्रभु, अल्नाह ! क्या 'तू' चाहता है कि मैं लोगों को यह बतला दूँ कि मैं 'तेरी' कृपा के बारे में क्या जानता हूँ और तेरा कौन-सा बलवा (देखवय) देखता हूँ बिधये उनमें से कोई भी कभी प्रार्थना में तुम्हारे सामने न झुके ।' उस आवाज ने उत्तर दिया, 'तू अम्ना भेद डिगये रख और मैं अपना भेद डिगव रखूँगा' ।"

"उसने कहा हे अल्नाह, मोत के फरिश्ते का तू मेरे पास मत भेज क्योंकि मैं अपनी आत्मा उसे समर्पित न करूँगा । मैंने अपनी आत्मा तुमसे पाई है और तब सिनाय आय निषी को मैं इस नहीं दे सकूँगा' ।"

"उसने कहा, 'मरे जना हा जाने के पश्चात् मोत का फरिश्ता मेरे यशत्रा में से किसी एक के पास आकर उसकी रूह (आत्मा) निकालेगा तथा उसका साथ बड़ाता से पश आयेगा । तब मैं मकबरे से अपने हाथ उभरकर उगन मुग पर अल्नाह का जलवा दामूँगा' ।"

"उसने कहा, 'यदि मैं 'अल्लुह-अज्जाक' (सर्गों का भी स्वर्ग ब्रह्मलोक) का चलने की आज्ञा दूँ तो यह उगस पावन करेगा और यदि मैं मूर से रुक जान का कहूँ तो यह अपने माग पर चलने से रुक जायेगा' ।"

"उसने कहा, 'न मैं मर हूँ और न तपस्वी, न मैं धर्मशास्त्रा हूँ और न गुरे । ये परमात्मा । तू 'एक है और तरे 'एकत्व' द्वारा मैं भी 'एक हूँ' ।"

“उसने कहा, ‘मरा सिर ही ‘अकुलम् अकुलान् (ब्रह्मलोक) है और मरे चरण ही पाताल हैं और मरे दानों दाथ पूर्ण और पञ्चिम दिशायें हैं।’”

“उसने कहा, ‘यदि कोई यन्त्र यह प्रियाच नहीं करता कि मैं ‘हम्’ (विस दिन मुझे अपनी कृतों से उठ खड़ा हूँ) मैं स्वका हो जाऊँगा और जब तक मैं उसका आगे न चलेगा वह वाहस्त (नवग) में प्रवेश न कर सकेगा, तो उस यहा मुझसे मनाम करने नहीं आना चाहिये।’”

“उसने कहा ‘बुकि परमाना ने मुझ मय मुझसे २१ मय कि- है, बहिरु मुझे दूता फिरता है और गोनय (नरक) मुझसे मय जाता है। यदि बहिरु और दोनय इस स्थान से हा-र निकले जहाँ पर मैं हूँ, तो दानों ही उनमें रहने वाले सभी व्यक्तियों के साथ मुझमें लय हो जायेंगे।’”

“उसने कहा, ‘मैं बिल लटा हुआ था रहा था। परमाना के सिद्धा मय के एक कोने से थोड़ा नीचे मरे मुँह में टकरा रहा और मैंने अपनी आ-यना में एक मयुरता का अनुमय किया।’”

“उसने कहा, ‘सब की चमड़ा के भीतर का कुछ है उसमें से यदि थोड़ी सी बूँद भी उसका मुल से बाहर निकल आये, तो स्वयं और मृत्यु लोक के समस्त प्राणी एषदम मय हो उठेंगे।’”

“उसने कहा, ‘प्राथना द्वारा सन्तगण मद्यनियों को समुद्र में तैरने से रोक सकते हैं और पृथ्वी का इस प्रकार का सञ्चलन है कि लोग यह समझ लें कि मृत्यु आ गया है,।’”

“उसने कहा, ‘यदि ‘उसका’ (मित्रों के) हृदय में गुम, परमाना का मय प्रकट हो आवे तो साथ ससार का और अग्नि से मर जायगा।’”

“उसने कहा, ‘जो परमाना के सग रहता है उसने सभी दरप कष्टों से दूर हो हैं, सभी भयम बानें गुन ली हैं, सभी कल्प कर लिये हैं मय सभी हावपर बानें जान ली हैं।’”

“उसने कहा, ‘सभी वस्तुएँ मेरे भीतर हैं किन्तु स्वयं मेरे लिये मेरे भीतर कोई स्थान नहीं है’ ।”

“उसने कहा, ‘वमस्कार ‘परमात्मा के पथ’ के सहस्र मकामात (विभामस्थला) में से पहला मकाम है’ ।”

‘उसने कहा, ‘जब तक तू खोजा न जा, तू खोज मत कर क्योंकि जब तू जिस खोजता है पा जायगा, तो वह तेरे ही अनुरूप होगा’ ।”

“उसने कहा, ‘नित्य प्रति तुम्हें सहस्रों बार मरना और जीना चाहिये, जिससे तू अनन्त जीवन प्राप्त कर सके’ ।”

‘उसने कहा, ‘जब तू परमात्मा को अपनी शून्यता और अपना अनस्तित्व देगा तो परमात्मा तुम्हें अपना सब कुछ दे देगा’ ।”

मुसलमान सन्तों की जीवनियों में वर्णित वमस्कारों व विभिन्न प्रकारों की गिनाना और उदाहरण देकर समझाना लगभग एक असमाप्तप्राय कार्य होगा—उदाहरणार्थ पानी पर चलना हवा में अकल या किसी यात्री सहित उड़ना, बघा करना, एक ही समय में विभिन्न स्थानों पर प्रकट होना, फूँफू मारकर चक्का करना, मुर्दे का जीवित करना, मरिध्य में हाने वाली घटनाओं को जान लेना और उनकी भविष्यवाणी करना, दूसरे के मन के भाव जान लेना, एक शब्द या वकत द्वारा जिसा दुष्ट शक्ति को लकड़ा मार देना (अशक्त कर देना) या उसका खिर काट लेना, पशुओं या पौधों से बातचीत करना, मिट्टी को सोना या मूल्यवान पत्थर में परि वर्तित कर देना, भोजन और पानी उगम कर देना, इत्यादि । मुसलमान व निय, जिसे प्रकृति व नियम का कुछ भी ज्ञान नहीं है, उसका कथना नुसार, ऐति मन्त्र व यह सब कार्य समान रूप से महत्वपूर्ण प्रतीत होते हैं । दूसरी ओर इन लोग अपने को इसका नियम बाध्य समझते हैं कि जिस बात को हम रियेक रहित तथा असम्भव समझते हैं उसका उस बात से निमेद करें जिसका नियम हम किसी प्रकार का प्राकृतिक कारण ढूँढ़ सकते हैं । मन पर प्रभाव डालना, विरहास और संकट द्वारा चिक्किता करना मानसिक संक्रमण, उत्पातानित भ्रम, कृत्रिम निरा

लाने वाले सकेत और इसी प्रकार के अन्य आपुनिक सिद्धान्तों ने पूर्वीर मस्तिष्क में स्थित इस अचकारमय महाद्वीप तक पहुँचने का नित्य एक प्रयत्न मार्ग हमारे समक्ष खोल दिया है। यद्यपि यह विषय बहुत शक्य है फिर भी मैं इसमें इस समय अधिक दूर तक नहीं जाऊँगा। यूनिया का उच्च शिक्षा में सन्तों की समकारिक शक्तियों का साथ न्यूनाधिक महत्वपूर्ण है और दरपेश सम्प्रदायों का महत्त्वपूर्ण रहस्य में इन शक्तियों का अत्यधिक महत्वपूर्ण होना इसका मर्यादा स्मृत होना का एक स्पष्ट लक्षण है।

निम्नलिखित अनुष्ठान, जिस मंत्रे कुछ-कुछ सुना दिया है कृत्रिम निद्रा लाने की उस प्रक्रिया का एक सुन्दर साधन प्रस्तुत करता है जिससे द्वारा दर्पेश परमात्मा से मिलन प्राप्त करता है —

“शिर का सदा रहस्यमय रूप से करने मुहिंद (आध्यात्मिक गुरु) का वाद रचना चाहिये और निरन्तर उसका ध्यान और चिन्तन करके मन का उसी में समा देना चाहिये। सभी बुरे विचारों से गुरु उसका रक्षा करता है। गुरु की आत्मा शिर की समस्त चेष्टाओं में उसका साथ रखती है और यह जहाँ भी जाता है, वह उसके साथ सरदायः का समान बनी रहती है। ध्यान करते करते यह बीच इतने उच्च स्तर तक पहुँच जाती है कि वह सभी मनुष्यों और सभी वस्तुओं में गुरु का ही देगना है और बने हुए है। जैसे बुद्ध का प्रसारित पन्थ प्रत्येक वस्तु का धारण और जीवन होता है। इस स्थिति को मुहिंद या गुरु में ‘स्वयं का लय कर देना’ कहते हैं। गुरु अपने प्रतिनाम्निक रूपों द्वारा यह ज्ञान लेता है कि उसका शिर जिस दर्जे तक पहुँच गया है और शिर की आत्मा उसकी आत्मा का साथ एक हो पायी है अथवा नहीं।

“इस अवस्था में पहुँचने पर शिर उस शिर को अपने सम्मान का संस्कार दिव्यतः दीर की आध्यात्मिक शक्ति का अर्पण कर देता है और वह शिर अपने शिर का आध्यात्मिक शक्ति के महारे उस पर का प्रत्यक्ष करता है। इस दीर में ‘स्वयं का लय करना’ करना है। इस का

उस पीर का मानो अङ्ग बन जाता है और उसकी समस्त आध्यात्मिक शक्तियों का अधिष्ठात्री बन जाता है।

“तीसरी अवस्था में भी यह शेष की आध्यात्मिक शक्ति के सहारे पैगम्बर के निष्पट पहुँच जाता है और अब वह सभी वस्तुओं में पैगम्बर को ही देखता है। इस अवस्था को पैगम्बर में स्वयं को लय करना कहते हैं।

‘बीधी अवस्था में शिष्य परमात्मा तक पहुँच जाता है। वह सभी वस्तुओं में परमात्मा का दर्शन करने लगता है और अपने ठगस्य (परमात्मा) के साथ एकत्व प्राप्त करता है।”

यहाँ पर वर्णित प्रक्रिया का एक सुन्दर और ठोस उदाहरण तबस्कुल बेग की प्रसिद्ध कहानी में मिलेगा, जो मोल्ता शह्र के नियंत्रण में इन सभी अनुभवों से हावर गुजरे थे। पूर्ण रूप से उद्धृत करने के लिये उनकी कथा बड़ी लम्बी है और हाल ही में प्रोफेसर डी० बी० मकदानरह ने इसका अनुवाद अपनी पुस्तक ‘रिलीजस लाइफ ऐण्ड ऐटीचूड इन इस्लाम’ में किया है। मैं ऊपर वही दूर चारों अवस्थायों में से प्रथम का वर्णन करते अनुच्छेदों को उन्हीं के शब्दों में यहाँ उतार रहा हूँ —

‘तब उन्होंने मुझे अपने सामने बैठने को कहा। मुझे ऐसा लगा माना मेरी इन्द्रियाँ पर कोई नया छाया हुआ है। उन्होंने मुझे अपने भीतर अपनी ही प्रतिछवि का ध्यान करने को कहा। उन्होंने मेरी छाँवों पर पड़ी चाँप कर मेरी समस्त मानसिक शक्तियों को मेरे हृदय पर केन्द्रीभूत करने को कहा। मैंने आवाज बालन किया और क्षण भर में ही देवी कृपा से और शाय की आध्यात्मिक शक्ति की सहायता से मेरा हृदय लुप्त गया। तब मैंने देखा कि ठगटे हुए प्याले के सन्ध्या चाँद वस्तु भरे भीतर विराजमान है। अब वह प्याला सीधा हो गया तो मुझे अपने भीतर असीम ध्यान की अनुभूति हुई। मैंने अपने गुरु से कहा, ‘यह गुदा जहाँ मैं आयज सम्मुख बैठा हुआ हूँ यह हृवहू भरे अन्तर में दिगोई पड़ती है और मुझे आन पड़ता है जैसे एक-दूसरा तबस्कुल बेग एक

दूसरे मोल्लाह शाह के सामने बैठा हुआ है।' गुरु ने उत्तर दिया, बहुत ठीक ! पहली छाया जो तुम्हें दिखाई पड़ती है वह गुरु की प्रति-छाया है। तब उन्होंने मुझ अपनी छाँवें खोलने को कहा और मैंने उन्हें अपनी शारीरिक छाँवों से अपने सामने बैठा हुआ देखा। तब उन्होंने मुझे फिर से अपनी छाँवें बाँध लेने का कहा और मैंने अपनी आध्यात्मिक दृष्टि से उन्हें उसी प्रकार अपने सामने धरा हुआ देखा। महान् आश्चर्य से मैं चिल्ला उठा, 'ऐ मेरे मालिक, मैं चाहूँ अपनी शारीरिक छाँवों से देखूँ अथवा अपनी आध्यात्मिक दृष्टि से, मुझे कबल तुम्हीं सदैव दिखाई पड़ते हो !"

फिर जामी द्वारा देखी गई और लिखित करने ऊपर सम्मोहन प्रयोग की एक घटना नीचे दी जा रही है।

"काशगर निवासी मौलाना सादुरीन थाफी 'तबस्सद्' (ध्यान को केन्द्रित करने) के पश्चात् चेतनाशून्य होने के चिन्ह प्रकट करने लगते थे। कोई भी जो इस परिस्थिति से अनभिज्ञ होता वह समझता कि उन्हें निद्रा आ रही है। जब मैंने पहले पहल उनका साथ किया तो एक दिन ऐसा हुआ कि जामा मस्जिद में मैं उनका सामने बैठा था। करने लगा कि अनुसार वे मावाकिन्दायस्था में हो गये। मैंने सोचा कि वे खाने जा रहे हैं। अतएव मैंने उनसे कहा, 'यदि चारदी इच्छा थोड़ी देर तक विभाम करने की हो तो आप मुझ बहुत दूर न प्रतीत होंगे।' यह सुनकर और बोले 'वह स्पष्ट है कि तुम यह निराशा नहीं करते कि वह निद्रा से भिन्न कोई वस्तु है।"

निम्नलिखित उदाहरण तो और भी बड़ी कठिनाइयाँ प्रस्तुत करता है -

"मौलाना निजामुद्दीन रामोरा का कथन है, 'एक दिन मेरे गुरु अलाउद्दीन अत्तार, प्रसिद्ध सन्त मुहम्मद इब्न अली हफीज का मजार देखने, जा तिरमीज़ में है, रवाना हुये। मैं उनका साथ नहीं गया बल्कि पर पर ही रहा और अपनी 'तबस्सद्' द्वारा (अन्तर्मुख का केन्द्रित करने

सन्त की आध्यात्मिक शक्ति को अपने सम्मुख लाने में समर्थ हो गया यहाँ तक कि जब मेरे गुरु मजार पर पहुँचे तो उन्होंने उस खाली पाया । इसका कारण उन्हें अच्युत ही मालूम हो गया होगा, क्योंकि बापट लौटने पर वे मुझे अपने नियन्त्रण में करने का उपक्रम करने लगे । मैंने भी अपने मन को केन्द्रीभूत किया किन्तु मुझे शत हुआ कि मैं एक कबूतर की भाँति हूँ और गुरु मेरा पीछा बाज़ की भाँति कर रहे हैं । वहाँ कहीं भी मैं गया गुरु सदैव मेरे पीछे मौजूद थे । अन्त में बचने से निराश होकर मैंने पैगम्बर (अल्लाह उन्हें शान्ति दे) की आध्यात्मिक शक्ति की शरण ली और उसके अनन्त प्रकाश में लय हो गया । अब गुरु मेरे ऊपर नियन्त्रण करने में असमर्थ हो गये । अपनी तीव्र लोभ के कारण वे बीमार पड़ गये और मेरे अतिरिक्त अन्य कोई भी इसका कारण न जान सका ।”

अलाउद्दीन वं पुत्र दगाबा इसन अत्तार नियन्त्रण करने की ऐसी शक्तियों के अधिकारी थे कि वे कबल सद्गुरु द्वारा किसी भी व्यक्ति आह्लाद की अवस्था में कर देते थे और उसे ‘क्रान्ति’ की वे अनुभूतियाँ प्रदान करते थे जिन्हें कुछ ही महीने दीर्घकालीन आत्मसंयम के परिचायक बना देता ही प्राप्त करना है । कहा जाता है कि वे शिष्यगण तथा दर्शनाधीन, जिन्हें उनका हाथ चूमने का सम्मान प्राप्त होता था, सदा अचेत होकर भूमि पर गिर पड़ते थे ।

कुछ सन्तों के बारे में यह विश्वास किया जाता है कि उनमें इच्छा नुसार रूप धारण करने की शक्ति होती है । ऐसे अत्यधिक प्रसिद्ध सन्तों में मोमुल निवासी अबू अब्दुल्लाह भी एक थे जो क़दीर अल बान व नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं । एक दिन मोमुल के राजा ने, बा उन्हें गहनीय काफ़िर मानता था, नगर की एक गली में उन्हें विपरीत दिशा से अपनी ओर आत देखा । उसने उन्हें पकड़ कर राजा व सम्मुख ले जाते तथा उन पर आरोप लगाने का अन्त मा में सद्गुरु किया, ताकि वे दण्डित किए जा सकें । यथावक उसने दगा कि क़दीर अल-बान ने एक ‘मुद’

का रूप धारण कर लिया है। उसकी ओर बढ़ते समय सन्त का रूप पुन बदल गया। इस बार उन्होंने मरुभूमि के एक श्रम का रूप धारण कर लिया। और भी निकट आने पर अन्त में उन्होंने एक घनशाली की आकृति और वेपथू का धारण कर ली और चिल्ला कर कहा “दे क्रांती! तुम निष्ठ कृदीव अलु-आन का राजा व सम्मुख घसीट कर ले जाओगे और दण्ड दोगे?” क्रांती अपने वैरभाव का प्रायश्चित्त करता हुआ सन्त का शिष्य हो गया।

अन्त में मैं निजीय पदा में दास आशुपालन' अर्थात् बिना किसी पार्थिव साधन व चलायमान करने के दो कथित उदाहरण देना चाहता हूँ।

“ब्रह्म जूल नून कुछ मित्रा से इस नियम पर बातचीत कर रहा था, उसने कहा, यह एक सोफा (गोदार् कुर्सी) है। यह कमरे में चक्कर लगायगा, यदि मैं इसे ऐसा करने को कहूँ। जैसे ही उसने ‘चल’ शब्द का उच्चारण किया सोफा कमर का एक चक्कर लगाकर अपने स्थान पर लौट आया। दरवाजे में से एक नयनुरक फूट-फूट कर रोने लगा और ठहर प्राण पतैरु उड़ गया। उन लोगों ने उसका उसी सोफा पर लंटाकर दफनाने का लिए स्नान करवाया।”

“अशोना, अशुल हसन खुशकानी से मिलने गया और उगन गुरा ही एक लम्बी और गूँ बहल छड़ दा। कुछ समय परन्तु अन्त, जो एक निरक्षर व्यक्ति था ऊब गया। अतएव यह उठ गया हुआ और बोला, “तुमारी बगिया में मुझे बारू बगीचे की दीवार टीका करनी है।” यह एक बमूली लेकर बाहर चला गया। जैसे ही यह दीवार का ऊपर चला, बमूली उसका हाथ से छूट कर नीचे गिर पड़ी। अशोना उस उगने को दौड़ा, निरु ठहरे पहुँचने का पहले ही बमूली रख ही उठकर मन्त का हाथों में पहुँच गई। अशोना ने अपनी आन नियंत्रण शक्ति को दिया और छद्मित में विश्वास की जो ‘तोति’ उसके हृदय में उठ समन बगी यह वह उसने जीवन का अन्तिम काल तक, जबकि उसने दण्ड शास्त्र का लिय रहस्यवाद को छोड़ दिया, कभी नहीं।”

मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि इस अध्याय में इस महान् विषय के साथ बहुत थोड़ा साय हो पाया है। सूक्ष्मत्व के इतिहासकार को, चाहे वह कितना ही दुःखी क्यों न हो, यह स्वीकार करना पड़ेगा कि सन्तत्व के सिद्धान्त का एक मूलभूत स्थान है और सूक्ष्मत्व के व्यावहारिक परिणामों में इसका अत्यधिक प्रभाव है जैसे आकाश (भावाविष्टावरण) की धोखी वाले मनुष्यों की प्रमाणिकता को विनीत मात्र से स्वीकार करना, उनकी कृपा पर निर्भर रहना, उनके मन्तारों के दर्शन करना, उनके अथ शेरों की आराधना करना और प्रत्येक मानसिक और आध्यात्मिक शक्ति को उनकी सेवा में लगा देना। केवल अपने अन्तःकरण के प्रकाश में परमात्मा की उगाहना करना मयप्रद हो सकता है, किन्तु दूसरे का अन्तःकरण के प्रकाश में 'उठे' खोजना और भी अधिक मयङ्कर है। निर्धारित पवित्रता का कोई प्रतिगार नहीं है। सभी लोकों ने इस सत्य को अनेक सुन्दर अनुस्यूतों में अभिव्यक्त किया है किन्तु मैं अलाउद्दीन अत्तार की बीमनी से कुछ पंक्तियाँ ही उद्धृत करके सन्तोष करूँगा। यह वही सन्त है जिन्होंने, जैसा कि हमने देखा है, अपने शिष्य को सम्मोहित करने का व्यर्थ प्रयास इसलिए किया कि वह शिष्य द्वारा उसके साथ बली गर्द अहम्मानसुत्तर बाल का प्रतिशोध लेना चाहता था, उसके बीमनक्या लेनक का करना है कि उसने कहा था, "परमात्मा के सन्निधत्त रहना परमात्मा के प्राणियों के सन्निधत्त रहने की अपेक्षा अधिक उपयुक्त और भेदकर है।" यह बहुत ही अपनी पवित्र यात्री से निम्नलिखित पद गाया करता था —

“तू ता के गोरे गर्दा रा परस्ती,
बगिरे चारे मर्दा गर्द रा रस्ती।”

[तू पवित्रात्माओं के मन्तारों पर कम लक्ष उपागना करता रहेगा।
पवित्रात्माओं के बायों को कर और तू मुसलिव हो जायगा।]

षष्ठम् अध्याय

मिलनावस्था

“यह पहानी यही तर बही आ सकती है
बो कुछ इसने बाद हाना है शब्दों में बरत करन पाग्न नहीं ह ।
इस व्यक्त करने का तुम यदि संस्कारांग अरनाआ और आबनाआ,
ता भी ध्यय है इस रहस्य का उन्पाटन नहीं होता ॥
तुम धाक और जीन की सवारी करके समुद्र-तट तक जा मयते हा,
उसक बाद तुम्हे काष्ठ-वाहन (नौरा) से ही वाम लेना पड़गा ।
काठ का पाका सूखी भूमि पर बकार हावा है,
किन्तु समुद्र-यात्रियों के लिये वही मुख्य वाहन है ।
मौन ही यह काठ का पोका है
मौन ही समुद्र-यात्रियों का माग-दश आर सहाय है ।”

(मसनवी—बलानुमान कमी)

कोई भी व्यक्ति इस अध्याय के विषय अध्यात्माना याता के उरन
हृदय पर पहुँचे हुए रहस्यगानी की अरम्या का बिना यह मन्गून कि
नहीं समझ सकता कि परमात्मा से मिलन के सभी प्रतीकानक वगुन
और इसकी प्रकृति सम्झी सभी सिद्धान्त अँधेरे में लुनांग लगान के
समान हैं । इन उग चक्र के बारे में फाद धारणा कसे बना सकते हैं
बिना सगरी यथार्थ अनुभूति प्राप्त करन वाले अत्यन्तार्थ पन्थि करन हैं ?
मैं केवल यही उत्तर दे सकता हूँ कि सभी मनों घटनाओं का सम्भन मे
हमारे सम्मुख यही अत्रिाद् उपस्थित दृष्टी है, यन्नि निम्नतर स्तरों पर
यह कम उग प्रतीत होती है और यदि की मौन रहने का सोच भी उग

संश्रित के गूढ़तम रहस्यों की अद्वितीय विवेक और योग्यता से व्याख्या करने से नहीं रोक सकी है।

इसका वर्णन करने को चाहे जिन शब्दों का प्रयोग किया जाय, मिलना-पड़ना साधारणीकरण प्रक्रिया का चरमोत्कर्ष है जिसका द्वारा आत्मा को उस प्रत्येक वस्तु से धीरे धीरे पृथक् कर लिया जाता है जो उसका लिए निबाधीत है अर्थात् जो परमात्मा नहीं है। निर्वाण, या फेरल व्यक्तिगत सत्ता का अन्त होता है, के निरासीत 'फना' में, अर्थात् इसी के अपने जागतिष्ठ अस्तित्व को लय कर देने में, 'बका' अर्थात् उसका वास्तविक अस्तित्व के सदा रहने का समावेश होता है। जिसका 'अह' भाव मर जाना है यह परमात्मा में वास करता है और इस मृत्यु का अन्तिम लक्ष्य 'फना' है जहाँ से 'बका' अर्थात् इसी जीवन के साथ एकरूपता का प्रारम्भ होता है। सत्त्व में बद्ध सकते हैं कि देवत्व प्राप्ति ही सुगलमान रहस्यवादी का अन्तिम लक्ष्य होता है।

दसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक भाग में हुसैन इब्न मसूर, जो अल् हकनाज (ऊन धुनने याजा) का नाम से प्रसिद्ध है बगदाद में मौत के पाठ उतार दिया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि उसका मृत्यु-दण्ड का कारण राजनीतिक प्रेरणा थी, किन्तु हमें यहाँ इससे मतलब नहीं है। एनी के चारों ओर एकत्रित भीड़ में शायद थोड़ा ही लोग ऐसे थे जो यह निरास करते थे कि यह जो बुद्ध बहवा या वही या शायद लोग उसका एक पालकही पाकिर की भाँति दग्धित किया जाना परम प्रसन्नता और प्रणय समर्थन का साथ देस रहे थे। उसने दा शम्दी में एक वाक्य 'अनल हक' (मैं ही प्रसन्न हूँ) कहा था, जिसकी स्लाम ने उपद्रव को की किन्तु जिस वह कभी सुना न सका।

छुई माधियों की हाल ही में प्रकाशित गवेषणाओं से यह पहले पहल समझ हो सका है कि वह बज्जाया जाय कि हकनाज स्वयं इस प्रसिद्ध रूप का क्या अर्थ करता था और यह निश्चयपूर्ण कहा जाय कि यह उन सनातन-नयी व्याख्याओं से भल नहीं साता जो परवर्ती काल के

विभिन्न सम्प्रदायों के सूफियों द्वारा की गई है। इस्लाम के अनुसार मनुष्य में देवी सत्य विद्यमान रहता है। परमात्मा ने आदम को अपना ही प्रतिरूप बनाया। उसने अपने अनन्त प्रेम की वह प्रतिमा अपने से आगे बढ़ाया जिससे वह उसमें एक दर्पण की भाँति अपने को देख सके। इसीलिए उसने फरिश्तों को आदम की उपासना करने को कहा, (कुरान २:३२) जिसमें वह उसी प्रकार अवतरित हुआ, जिस प्रकार इसा में।

। "बद हा उसकी जिसने अपनी मनुष्यता में (आदम में) अपने ज्योतिर्मम दैवत्व को प्रकट किया,
और तब अपने प्राणियों के समक्ष खाने-पीने वाले (इसा) के रूप में सत्य प्रकट हुआ।"

चूँकि परमात्मा का 'नासूत' (मनुष्यत्व) मनुष्य की समस्त शारीरिक और आध्यात्मिक प्रकृति से मिल कर बना है, परमात्मा का 'साहूता' (देवत्व) उस प्रकृति से अवतार को छोड़ कर शेष किसी साधन द्वारा एकत्र नहीं हो सकता अथवा मासिकों व शब्दों में, बिना देवी आत्मा के प्रकट हुये (हुलूल) ऐसा कि उस समय होता है जब मानव आत्मा देह में प्रवेश करती है यह एकत्र नहीं हो सकता। अरबी एक कविता में इस्लाम इस प्रकार से कहता है

"तवी आत्मा मेरी आत्मा में मिल गई है जैसे मदिरा स्वच्छ जल में मिल जाती है।

तब सार्य करने वाला मेरा स्वयं करता है देग, प्रत्येक दशा में 'तू' मैं ही है।"

आगे यह फिर कहता है —

"मैं यह हूँ जिससे मैं प्रेम करता हूँ और यह जिससे मैं प्रेम करता हूँ मैं ही हूँ।

हम एक ही देह में निवास करने वाली दो आत्माएँ हैं।

यदि तू मुझे देखता है तो तू उसे भी देखता है

और यदि तू उसे देखता है तो हम दोनों को देखता है।”
 हल्लाज द्वारा दिये गये इस निर्विघ्न रूप में स्वयं को देवत्व प्रदान करने का यह सिद्धान्त स्पष्ट रूप से ईसाई धर्म के मुख्य सिद्धान्त के समान है, अतएव मुसलमानी दृष्टिकोण के अनुसार यह धोर ‘कुफ्र’ है। यह सिद्धान्त शुद्ध रूप में केवल उसके निकटतम अनुयायियों में ही बचा रह सका। ‘हुलूलियों’ की अथात् अवतारवाद में विश्वास करने वालों की मर्त्सना सभी खूनीय उसी उग्रता के साथ करते हैं जिस उग्रता का साथ सनातनपंथी मुसलमान करते हैं। किन्तु पूर्ववर्णित लोगों (सन्तियों) ने ‘हुलूल’ के सिद्धान्त की बिना किम्बदन्ति निन्दा करने के साथ-साथ हल्लाज को इसका शिक्षक होने के सन्देह से मुक्त करने का भरसक प्रयास किया है। उसके बचाव में तीन मुख्य दलीलें दी जाती हैं
 (१) हल्लाज ने ‘हक’ (परम-सत्य) के विरुद्ध कोई अपराध नहीं किया, किन्तु उसने ‘शरीअत’ के विरुद्ध गम्भीर अपराध किया, अतएव उसका दण्डित किया जाना न्यायोचित था। उसने उस सर्वोच्च रहस्य को, जिसे सुने हुये मर्त्तों के लिए ही मुज्जित रखना चाहिये, सर्वसाधारण के समक्ष घोषित करके ‘अपने प्रभु का मेद प्रकट कर दिया।’ (२) हल्लाज ने जो कुछ कहा आह्लाद (मायानिष्ठत्वस्था) के उन्मादक प्रभाव में कहा। यह समझता था कि यह देवी सत्य का साथ एकमेक हो गया है, जब कि उसने देवी गुणों में से केवल एक का साथ एकत्व स्थापित किया था। (३) हल्लाज यह बतलाना चाहता था कि परमात्मा और उसके बनाये जीवों में कोई वास्तविक अन्तर या विलगाव नहीं है, क्योंकि परमात्मा का एकत्व में सभी प्राणी अन्तर्हित हैं। जो व्यक्ति अपने जागतिक अहं से पुरुषरूप पर हो जाता है वही अपने वास्तविक अहं में वास करता है और वास्तविक अहं ही परमात्मा है। उस घोरतम में न ‘मैं’ का स्थान है न ‘तू’ का और न ‘तू’ का ही। ‘मैं’, ‘हम’, ‘तू’, और ‘वह’ एक एक वस्तु हैं। इसलिए ‘अनल हक’ कहने वाला हल्लाज नहीं था वरन् परमात्मा ही था, जो ‘अहं’ की चेतना से परे हो जाने वाले हल्लाज

गुप्त से इसका उच्चारण करता था, ठीक वैसे ही जैसे उसने मूसा से बलती हुई भाषी के माध्यम से बातचीत की थी।

अन्तिम व्याख्या को, जो 'अनल हक' को एक अथैयत्तिक अद्वैतवादी स्वयं विद्धि में परिवर्तित कर देती है, अधिकांश सृष्टी हल्लाज भी सची शिक्षा के रूप में ग्रहण करते हैं। बलाबुद्दीन रुमी ने एक सुन्दर गीत में कहा है कि कैसे 'एक ही क्योति' विश्व भर में सहस्रो रूपों में चमकती है और कैसे 'एक ही सत्व' सदैव एक ही रहते हुये समय-समय पर ईशान्य और सन्तो का रूप धारण करता रहता है और ये ईशान्य और सन्त मनुष्यों के समस्त इसकी साक्षी देते हैं।

"प्रत्येक क्षण वह दृश्य करने वाला सौन्दर्य विभिन्न रूपों में प्रकट होकर आत्मा को आलोकित करता है और गायब हो जाता है।

प्रत्येक क्षण वह 'प्रियतम' नया परिचय धारण करता है, अभी 'वह' बूढ़ है और अभी युवा।

अब 'वह' कुम्हार की मिट्टी रूपी पदार्थ की गहराई में बूढ़ पड़ा—
'आत्मा' एक गोतागोरा की भाँति बूढ़ पड़ा।

और अभी वह कीचड़ की गहराइयों से टला और पका हुआ निपल आया, तब 'वह' सत्कार में प्रकट हुआ।

'वह' नूढ़ बना और उसकी प्रार्थना पर सत्कार में प्रलय की बाढ़ आ गयी और 'वह' बड़ी नाव में बैठ गया।

'वह' इबाहीम बना और उसका प्रार्थना पर संसार में प्रकट हुआ,
आग की लपटों तक लिये गुलाब के फूल बन गयीं।

कुछ दिनों तक यह पृथ्वी पर घूमता रहा आने की आनन्द देने के लिये।

फिर 'वह' ईला बना और स्वर्ग के गुम्बद पर बूढ़ पर परमात्मा का ऐश्वर्य प्रकट करने लगा।

संक्षेप में, 'वह ही प्रत्येक पदार्थ में आया जाया करता था और उठ ही देने देता है।

श्रन्त में 'बह' एक 'श्रब' के रूप में प्रकट हुआ और संसार का साम्राज्य हासिल कर लिया।

यह बदलता रहने वाला क्या है ! पुनर्जन्म की वास्तविकता क्या है ! यह हृदयों का सुंदर विजेता—

तलवार बना और अली के हाथ में प्रकट होकर फल को काटने वाला बना।

नहीं ! नहीं ! क्योंकि मनुष्य के रूप में अनल इन्द्र का उद्घोष करने वाला भी 'बह' ही था।

यह व्यक्ति जो एनी पर चढ़ा मसर नहीं था यद्यपि मूर्ख लोग ऐसे ही समझते हैं।

'हूमी' न कभी 'गुरु' के शब्द बोला है और न बोलेगा उस अविश्वास मत करो !

जो कोई भी अविश्वास प्रकट करता है वह पात्रि है और नरक दण्डित होने वालों में एक है।"

यद्यपि पश्चिमी और मध्य एशिया से—जहाँ इरानी राजाओं की उनकी प्रजा देवता-गुण्य मानती थी तथा वहाँ अवतारवाद, परमात्मा व मनुष्य के आकार का होने तथा पुनर्जन्म के सिद्धांत वही की उपज है—मानव-व्रज का निवार न तो इतना अपरिचित था और न इतना अस्वाभाविक ही था कि उस साधारण की ब्रह्म मायना को बुरी तरह से नष्ट कर देता, किन्तु हल्नाब ने उस निवार को एक रूप में इस प्रकार से घुलन किया कि अपने को सुगलमान कहने वाला कोई भी सखीमन इसे सहन न कर सता, ग्रहण करना तो दूर भी थात है। यह दाया परना, कि देवी और मानव प्रकृतियाँ मिथिन और एकीभूत की जा सकती हैं, एकरवाद के सिद्धान्त से जिस पर इस्लाम धर्म आया है, इनकार करना है। किन्तु बाद के इतिहास को देखने से पत चलाता है कि जिस प्रकार से देवत्व प्राप्ति की मायना को एकमेक होने की माना मान लिया गया। इसका निश्चय भी सिद्धान्त—परमात्म

मनुष्य—ऊपर वर्णित विरवात्मनादी सिद्धान्त में लुप्त हो गया । परमात्मा से विलग होकर कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं है । मनुष्य उस सर्वोच्च सत्ता से उत्पन्न हुआ है अथवा उसका प्रतिबिम्ब या प्रतिरूप है । जिस वस्तु को वह अपनी वैयक्तिक सत्ता मानता है वह वास्तव में झगड़ है । वह न परमात्मा से विलग किया जा सकता है न मिनाया जा सकता है क्योंकि वह अस्तित्व हीन है । मनुष्य परमात्मा है फिर भी दोनों में एक अन्तर है । इन्तुल अरबी के अनुसार शायरत और नश्यर उस एक के ही दो पूरक अंग हैं । उनमें से प्रत्येक दूसरे के लिये आवश्यक है । संसार के प्राणी मनुष्य की वास्तविक इतिर्वा हैं और मनुष्य सृष्टि में प्रकटित परमात्मा की चेजना (सिर) है । किन्तु मनुष्य अपने मन के परिमित होने के कारण सभी विचारणीय बातों का एक साथ नहीं सोच सकता । इसलिये वह देवी चेजना का एक अंग ही ग्रहण कर पाता है । इसी कारण से उसे 'अनल-हऊ' (मैं भ्रम हूँ) कहने का अधिकार नहीं है । वह एक वास्तविकता है किन्तु 'वास्तविक सत्ता' नहीं है । हम देखेंगे कि अन्य एरिगण—उदाहरणाय बलालुगैन रुमी को ही लीजिये—अपने आह्लाद के लक्षणों में इस कुट्ट-कुल्ल सत्तन विमद की उपस्था कर देते हैं ।

यह कथन कि अपने व्यक्तिगत अहं के अनमित्तव का दोष हान पर सृष्टि सत्यत अमना परमात्मा के साथ एकाकार होने का दोष मानत मनुष्य है देवत्व प्राप्ति के मुसलमानी सिद्धान्त को ऐसे शब्दों में सज्जित कर देता है जिनसे इनारे पाठक गण परिचित हो सुरू हैं । मैं अरुत अपने शब्दों में और अशुभ विभिन्न लक्षणों के विमृत उद्धरण देकर यह दिखाने का प्रयास करूँगा कि इस बीज का और अन्तर अथ दिया जा सकता है ।

'जना' के कई रूपों का विमद दिया जा चुका है । इनमें से सर्वोच्च का अर्थ, अर्थात् देवी सत्य में लय हो जाने का पूरा बख्श निश्चारी न जाना है । उसने 'जना' और 'जानी' (लय हुआ) के स्थान पर 'मज्जात'

(लोभ या साधना का अन्त) और 'वाङ्मय' (वह साधक जो अपनी सोच या साधना का अन्त करके 'लोभे हुए पदार्थ' में लय हो जाता है) शब्दों का प्रयोग किया है। मूल पाठ और भाष्य में आने वाले कुछ मुख्य विचार नीचे दिये जाते हैं।

'वक्त्र' प्रकाशमान है और यह भिन्नत्व के भाव को, जो अन्धकार सत्त्व है, वैस ही दूर करता है जैसे प्रकाश अन्धकार को दूर कर देता है। यह सभी अस्त्रिज वाली वस्तुओं के नश्वर मूल्य को उनके असली और शाश्वत मूल्य में परिवर्तित कर देता है।

अतएव 'वाङ्मय' बाल और रघुन की परिधि का अतिक्रमण कर जाता है। "वह प्रत्येक घर में प्रवेश करता है किन्तु उसमें समा नहीं करना प्रत्येक बूज या जल पीता है किन्तु उसकी पिपासा शान्त नहीं होती तब यह 'मेरे' (परमात्मा के) पास पहुँचता है और 'मैं' ही उसका घर हो जाता हूँ और यह 'मुझ में ही पास करने लगता है"—यहने का तात्पर्य यह है कि वह सभी देवी गुणों को समझ लेता है और सभी मर्मा अनुभूतियों का ज्ञान हो जाता है। यह केवल 'नामों' (गुणों) से ही सन्तुष्ट नहीं होता बल्कि 'नामी' (परमात्मा) की तोज करता है। यह परमात्मा के सत्य वा चिन्तन करता है और उसमें अपने रूप का सादृश्य पाता है। अब यह प्राथना नहीं करता। प्राथना वा मनुष्य की ओर से परमात्मा के प्रति हानी है, किन्तु 'वक्त्र' में तो विषय परमात्मा के ही नहीं रहता।

'वाङ्मय' अपने पीछे बरझा रहने वा टाँक तक नहीं छोड़ जाता और न परमात्मा के विना कोई उत्तराधिकारी ही छोड़ता है। जब वक्त्र का दृश्य भी उसकी चेतना से छुन हा जाता है तब यह स्वयं प्रथम रूप हो जाता है। तब उसकी दृश्यर मृति का उद्गम ईश्वर ही होता है और उसका ज्ञान परमात्मा वा ज्ञान होता है जो 'मय' को उसी प्रकार से अकेला देगा है जैसा कि यह प्रारम्भ में था।

हमें यह जानने की आशा करने की आवश्यकता नहीं कि यह तत्त्व

मृत होना, प्रतिनिधि होना या रूप परिवर्तित होना जिस प्रकार से सम्भव होता है। यह सृष्टीमय का महान् विरोधाभास है। यह सत्कार में उत्पन्न मनुष्य में उस 'सत्ता' द्वारा किया गया महान् काय है जिसकी प्रकृति शाश्वत रूप से वीर्यधारियों की प्रकृति से भिन्न रहित है। पैदा कि मैंने ऊपर कहा है, चाहे जस भी कहना किया जाय, यह परिवर्तन मनुष्य में ईश्वर की सत्ता का नहीं उतारता, जिस 'हुल्लू' कहते हैं, अपना देवा और मानव प्रकृतियों में सार्वभौम नहीं स्थापित करना, जिस 'इतिहास' कहते हैं। य दोनों सिद्धान्त सामान्यतः अनाप्य धारण किए जाते हैं। प्रबु नव अन्तर्भाव ने अना पुन्यक 'सितार अन्तुना' के दो अनुपेक्षों में इन सिद्धान्तों की आलोचना की है —

“अनुवाद के कुछ रहस्यवादी इस गुलत सिद्धान्त की मानते हैं कि जब वे अपने गुणों से परे हो जाते हैं तो उनमें परमाना के गुण आ जाते हैं। यह सिद्धान्त अन्तर्भाव (हुल्लू) की आर या इसाईया में इसा के बारे में प्रचलित विश्वास की आर ल जाना है। विनाशित सिद्धान्त को कुछ प्राचीन लोगों द्वारा प्रतिपादित बनाना जाता है, किन्तु इसका सहा अर्थ यह है कि जब कोई अपने गुणों से निष्कल कर परमाना के गुणों में प्रवेश करता है तो वह अपनी इच्छा से निष्कल कर परमाना की इच्छा में मिल जाता है—यह जानते हुए कि उसकी इच्छा उस परमाना द्वारा प्रदान की गई है और इस कारण द्वारा ही वह अपने का अपने 'अह' से वृष्य कर पाता है—यहाँ तक कि वह पूर्यन्त से परमाना में लीन हो जाता है। यह अद्वैतवादियों की एक अभिप्राय है। जिन लोगों ने इस सिद्धान्त में गुलती की वे यह विचार न कर सकते कि परमाना की विनाशपूर्ण परमाना नहीं हैं। परमाना और उसका विनाशपूर्णों में सार्वभौम स्थापित करना 'अतिर' होने पर अस्वीकार करना है, क्योंकि परमाना हृदय में नहीं ठहरता बल्कि वस्तु हृदय में ठहरती है वह परमाना में विश्वास, 'उसकी' एकात्मता में विश्वास और 'उसके' विन्दन के प्रति सम्मान की भावना है।”

दूसरे अनुच्छेद में यह 'इतिहास' के सिद्धान्त का स्पष्टान करने के लिए इसी प्रकार के तर्कों का प्रयोग करता है —

सूक्ष्म लोग खाना-पीना यह सोचकर त्याग देते हैं कि जब मनुष्य का शरीर कमजोर हो जाता है तो उसमें मानवी गुण समाप्त होकर देवी गुण आ जाते हैं। इस सिद्धान्त को मानने वाले ना समझ लोग मनुष्य तथा मनुष्य के जन्मजात गुणों में विभेद नहीं कर पाते। मनुष्यता मनुष्य से उसी प्रकार नहीं विलग होती जिस प्रकार काली वस्तु से कालापन या उजली वस्तु से उजलापन। किन्तु मनुष्य के जन्मजात गुणों पर पड़ने वाला परम सत्ता का सूर्यशक्तिशाली प्रकाश उनकी परिवर्तित और रूपान्तरित कर देता है। मनुष्य व गुण मनुष्यता के मूलतत्त्व नहीं हैं। जो लोग 'ज्ञान' के सिद्धान्त पर जोर देते हैं उनका तात्पर्य यह होता है कि अपनी सभी क्रियाओं और अपने मति के कार्यों में अपनी कर्तृत्व भावना को त्याग कर निरन्तर यह चिंतन किया जाय कि परमात्मा ही अपने मज के लिये इन सब कार्यों को करता है।"

दुबवीठी इस निर्यात को, कि 'ज्ञान' का अर्थ सत्ता का लोप और मनुष्य शरीर का नाश होना है और ब्रह्मा का अर्थ परमात्मा का मनुष्य में घाव करने लगना है, मूर्खतापूर्ण बतलाता है। उसके बयनानुसार ज्ञान का सच्चा अर्थ अपनी प्रतियों के प्रति सचेत होना तथा उसकी चाहना को मिटा देना है। जो कोई अपनी नजर इच्छा से परे हो जाता है वह परमात्मा की नित्य इच्छा में वास करता है किन्तु न तो मनुष्य व गुण परमात्मा के गुण बन सकते हैं और न परमात्मा के गुण मनुष्य में आ सकते हैं।

हर के अन्दर मुस्ताने आतिश ठफ़्ठद के कहने से बलिष्ठते के गर्द। पस चूं मुस्ताने आतिश बसे से रा अन्दर से मुन्दल मुन्द। मुस्ताने इरादते हर अज्ञ मुस्ताने आतिश अबलातर। अम्मा ह समुर्के आतिश अन्दर बसे आहन अस्त व लविन रेने हुमानल कि हर्मिज आहन आतिश न गर्दद।

—दुबवीठी

“अग्नि की शक्ति अग्नि में पड़ने वाली किसी भी वस्तु को अपने जैसा बना लेती है फिर परमात्मा की इच्छा शक्ति ता अग्नि की शक्ति से निरचय ही बढ़ कर है। फिर भी अग्नि लोहे का गुण ही परिवर्तित करती है, उसका पदार्थ नहीं परिवर्तित करती, क्योंकि लोहा कभी भी आग नहीं हो सकता।”

अग्नि प्रथम व एक दूसरे भाग में हुजारी ने मिलन (‘जान’) को ध्यान का साम्य वस्तु पर केन्द्रित करना कहा है। इसी प्रकार मन्त्रों भी अपने विचारों को लैला पर केन्द्रित कर देता था जिससे उसे सारे ससार में केवल वही दिखाई पड़ती थी और सृष्टि की सारी वस्तुएँ उसकी दृष्टि में लैला का ही रूप धारण करि रहती थी। कोई व्यक्ति बापजीद की गुंजा पर आया और पूछा, “क्या बापजीद यहाँ हैं?” उसने उत्तर दिया, “क्या परमात्मा व सिवाय यहाँ अन्य कोई है?” हुजारी आगे कहता है कि ऐसी सब दशाओं में वही सिद्धान्त लागू होना है वा इस प्रकार से है —

सुदा वन्दे तद्यात्मा मायए मुहन्वते सुद रा कि आँ यक बौहर
मुअद मतदङ्गी य मङ्गयून गर्दानीं व हर यरे रा अन्न
दोन्नां वर मेङ्गदारे गिस्त्रिजारीये ये वन्नां वपुजवे अन्न अन्नजाय
आँ कुल मङ्गयून वरद । आँ गाह वाश इन्सानियत य लेवास
तपीत य गारीयए मेजात व हेवान रद्द वरआँ फरो-गुत्रारत ।
ता आँ जुत व कुवते हर अन्नाए कि वदू मौगूल वृ वकिस्ते
सुद भी गर्दानीद ता मिले मोँ व जुमला मोहयन सुद य हमा
हरकत व लहजातय मुयमिते आँ । अन्नां वृ कि अन्ने
मघानी व अणहायुल भिसान मर आँ राँ जम नान वदन्द ।
— हुजारी

“परमात्मा अपने प्रमत्सी पदार्थ को निर्भाबित करके उसका एक एक
अणु अपने मन्त्रों में से प्रत्येक को उनकी उसका प्रति दानन्द विभोला

के अनुपात में विशेष अनुग्रह करके प्रदान करता है। फिर वह उस कण पर हाइ-मार्त, मानव प्रकृति, स्वभाव और आत्मा के आधार पर डाल देता है, ताकि अपनी शक्तिमान क्रिया शीलता द्वारा वह कण अपने से सम्बद्ध सभी कणों को अपने स्वरूप में रुपान्तरित कर ले, यहाँ तक कि प्रेमी का शरीर पूर्णतः प्रेममय हो जाय और उसकी क्रियायें और माय भगिमा प्रेम की अनेक विशेषतायें बन जाय। इस अवस्था को जेसोम जो आंतरिक ज्ञान को मानते हैं और वे जो बाह्य अभिव्यक्तियों को मानते हैं, समान रूप से 'मिलन' कहते हैं।"

फिर वह हस्ताक्षर के निम्नलिखित पद उद्धृत करता है —

लत्रैका लत्रैका या सप्यदी व मौलाई,
लत्रैका लत्रैका या मऊसदी व मानाई।
या ऐना ऐने वनूदी या मुन्तहा हम मी,
व या मन्तऊी व इशाराती व ईमाई।
व या मुल्ल कुल्ली व या समई व या वसरी,
व या मुमनती व तबार्ताती व अन्नजाई ॥ —हस्ताक्षर

'दे मेरे मालिक और प्रभु! तेरी ही इच्छा चले,
दे मेरे ध्येय और अर्थ! तेरी ही इच्छा चले।
दे मेरी सत्ता ये सत्त्व, मेरी अभिलाषा के लक्ष्य
दे मेरी याशी, मेरे सयत् और मेरी माय-भगिमा,
दे मेरे सयस्य, दे मेरी दृश्य शक्ति और भव्य शक्ति
दे मेरे समग्र, मेरे मूलतय और मरे कण ॥'

कर्त्ता और कर्म के मायाबाल से बाहर निकला हुआ आकाशित यन्त्रि, जो सभी सीमाओं को लांघ कर 'एकत्वं' प्राप्त कर चुका है, न तो यही कह सकता है कि यह कुछ नहीं है और न यही कह सकता है कि यह सब कुछ नहीं है। 'विषयायन टंग' के उदाहरण के श्रिय जलालुद्दीन रूमी के एक शीत की प्रारम्भिक पंक्तियाँ ले लीजिये, जिन्हें मैंने

आरसी छुन्दा का यथासम्भव अनुकरण करत हुए अपनी भाग में छन्दोमय करने का प्रयास किया है ।

अरे ! जब मैं आने का ही नहीं जानता तो मैं परमात्मा के नाम से क्या करूँ ?

न मैं 'प्राप्त' की उपासना करता हूँ न 'हलात्' की, मैं न 'जाठर' हूँ न यहूदी ।

घर मेरा न पृथ में है न परिचय में, न पृथ्वी पर न समुद्र में, न मैं पश्चिमो के सामान हूँ न पश्चिमो के,

मैं न अग्नि से बना हूँ न वन से, न धूल से बना हूँ और न आस से ।

मैं न सुदूर चीन से पैदा हुआ न सुदूर चीन में और न बलगार में मैं न भारत में पैदा हुआ, जहाँ पाँच नदियाँ हैं, न इराक में, न तुरातान में ।

मरा वास न इस लोक में है, न परलोक में, न नरक में और न स्वर्ग में

मैं न 'आत्म' और 'विद्वान' से पवित्र हुआ न 'आत्म' का यशस्व हूँ ।

स्थान की विद्यान सीमाओं से परे एक स्थान में, एक एक भूगण्ड में बिछने बिन्दु की परछाई भी नहीं मिलती,

मैं दह और आत्मा की सनातना से आग बूझकर अपने 'विद्वान' की आरना में नये सिरे से वास करता हूँ ।”

बलाजडदीन द्वारा ही लिखित निम्नलिखित कविता जगत सम्बन्धी चेतना के विधानात्मक रूप की अभिव्यक्ति करती है —

“ये मुसलमानों, यदि संसार में कोई प्रती है तो यह मैं हूँ ।

यदि कोई विश्वासी या कश्मिर या इराक़ या तुर्की तो यह मैं हूँ ।

मैं ही शराब की सलहट हूँ, साड़ी हूँ, गरमा हूँ, बीजा हूँ, सन्निह हूँ ।

मैं ही भाग्य हूँ, शमा हूँ, सुधपान हूँ और सुरापान किये हुएों की मस्ती हूँ ।

ससार के बहत्तर धर्मों और सम्प्रदायों का वास्तविक अस्तित्व नहीं है ।

कुरुम अस्त्राह की । मैं ही प्रत्येक धर्म और सम्प्रदाय हूँ ।

क्या तु जानता है कि क्षिति, जल, वायु और समीर क्या हैं ?

क्षिति, जल, वायु और समीर ही नहीं, देह और आत्मा भी मैं ही हूँ ।

सत्य और असत्य, भला और बुरा, कठिन और सरल, आदि और अन्त,

ज्ञान और विद्या तपश्चर्या, दया और विरवास—सब मैं ही हूँ ।

विरवास रख कि नरकाग्नि और उससे निकलती लपटें ।

स्वर्ग और 'अदन' और हूरें' (अप्सरसों) सब मैं ही हूँ ।

यह पृथ्वी और स्वर्ग और यह सब जो उनमें है ।

परिश्ते, परियाँ, जिन और मनुष्य—सब मैं ही हूँ ।"

जो कुछ बलालुद्दीन ने आकाश के खण्डों में कहा है वही इनकी मोर ने विगत अनुभव के रूप में कहा है ।

यह कहता है, "मनुष्य की आत्मा की यह अवस्था कितनी सुन्दर और कितनी शानदार होती है जबकि परमात्मा की शक्ति उसको (आत्मा को) विपिन बरके उसे अपने हाथ पृथ्वी और स्वर्ग से बाहर निकाल ले जाती है, उसका सम्पूर्ण ससार से एकत्र स्थापित करती है तथा एक क्रम से उसे धीरे-धीरे की अनुमति देती है । जो इस अवस्था में होता है वह सभी पदार्थों को 'एक' देखता है और यदि वह उस समय अपने बारे में सोच सकता है तो अपने को यह 'समग्र' या एक शेष के रूप में देखता है ।"

कुछ ग्रन्थों के लिये 'अना' रूपी आकाश में उल्टीन हा आना ही उनकी यात्रा का अन्त है । उसके पश्चात् उनमें और संसार में कोई

सम्बन्ध नहीं रह जाता। उनमें अनेक 'अह' का कुछ भी स्वेय नहीं रह जाता उनका व्यक्तिगत अस्तित्व मर जाता है। 'एकत्व' में विसर्जित होकर न उन्हें धर्म का ज्ञान रहता है, न धार्मिक नियमों का और न किसी प्रकार की दृश्यमान सत्ता का। किन्तु परमात्मा के नश में मदहोय वे भक्तगण, जो फिर कभी समय नहीं धारण करते, सर्वोच्च पूर्णत्व से नीचे रह जाते हैं। देवत्व प्राप्ति की पूर्ण परिधि में देवता की अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग दोनों रूपों का—एक और अनेक का, हर्ष-क्रुत (सत्य) और शरीरवत् (नियम) का समावेश होना चाहिये। बिना सृष्टिकृता परमाना के शरीरवत् जीवन में प्रवेश गिये, जो उसकी कृतियों में प्रकट हुआ है केवल पारमार्थिक प्रवृत्तियों से छुटकारा पा जाना ही पर्याप्त नहीं है। ज्ञान अर्थात् निबन्धन के मिटा देने के पश्चात् परमाना में वापस करना ('व्रत्ता') पूर्ण मनुष्य (इन्सानुल-वामिल) का मुख्य विन्दु है। ऐसा व्यक्ति कथन परमात्मा की ओर अर्थात् अनेकत्व से एकत्व की ओर ही जाता नहीं करता, बल्कि वह परमात्मा में और परमाना के साथ वापस करता है अर्थात् वह सदैव निम्ननामस्थान में रहता है और परमाना के साथ ही इस दृश्यमान जगत् में, जहाँ से यह चला था, वापस लौटता है और अनेकत्व में एकत्व को प्रकाशित करता है। इस अग्रसरण में "यह शरीरवत् का अना बाहरी निवास और मनीष्य का अरुण भीतरी निवास बनाता है, "क्योंकि यह धार्मिक नियमों में बताया गया कृत व्योम का पालन करते हुए 'हर्ष-क्रुत' (सत्य) को नीचे उतार कर मनुष्यों के समस्त प्रदर्शित करता है। जैसा कि किसी महान् ईसाई रहस्यवादी ने कहा है, ठीक-ठीक शब्दों में भी यह कहा जा सकता है कि —

"यह परमाना की ओर आन्तरिक प्रेम के कारण जाता है, अर्थात् शरीरवत् कार्य में लगता है, और यह परमाना में अपनी कल्पना होने वाली रूचि के कारण प्रवेश करता है, अर्थात् शरीरवत् विधान करने लगता है। यद्यपि यह परमाना में वापस करता है फिर भी यह सभी निर्मित यस्तुओं की ओर उनका प्रति प्रेम मानना से जाता है और उनका

साथ पवित्रता और सदाचार का व्यवहार करता है। और यही आध्यात्मिक जीवन का सर्वोच्च शिखर है।”

अग्नीपुद्गल तिलिमसानी ने अपने निष्पत्तरी पर लिखित भाष्य में चार रहस्यवादी यात्रायें बतलाई हैं

पहली का प्रारम्भ ‘माखिब’ (ज्ञान) से और अन्त ‘जना’ (पूर्ण लय होने) में होता है।

दूसरी का प्रारम्भ उस समय होता है जब ‘जना’ का स्थान ‘बका’ ले लेती है।

जो इस अवस्था को प्राप्त कर चुकता है वह ‘हक’ में, हक के साथ और ‘हक’ की ओर यात्रा करता है तब यह ‘हक’-स्वरूप हो जाता है। इस प्रकार यात्रा करते हुये आगे बढ़ते हुये वह ‘कृत्य’ की स्थिति में पहुँच जाता है, जो पूर्ण-मानव की स्थिति है। यह आध्यात्मिक जगत का कन्द्र बन जाता है जिससे मनुष्यों द्वारा पहुँचा जाने वाला प्रत्येक सिद्ध और प्रत्येक सीमा, चाहे वे दूर हों या निकट हों, उसकी स्थिति से समान दूरी पर होते हैं, क्योंकि सभी स्थितियाँ उसकी स्थिति के चारों ओर घूमती हैं और ‘कृत्य’ के लिये दूरी और नज़दीकी में कोई अन्तर नहीं होता है। इस सर्वोच्च स्थिति को प्राप्त मनुष्य के लिए इहम्, माखिब और जना (ज्ञान, ब्रह्म ज्ञान और लय होना) उस मनुष्य रूपी समुद्र में मिलने वाली नदियाँ व समान हैं, जिनके द्वारा वह जिसे चाहता है फिर से भर देता है। उसे दूसरों को परमात्मा का मार्ग प्रदान का अधिकार है और इसके लिये उस अपने विषय अन्य किन्हीं में अनुमति नहीं लेनी पड़ती। देवदूत का द्वार बन्द हो जाना व पूरा यह होना वा देवदूत की पदवी का अधिकारी होता, किन्तु हमारे समय में ‘आध्यात्मिक गुरु’ या शोध हा उसकी उत्तुष्ट पदवी है। जो लोग उसकी सहायता की याचना करते हैं उनके लिए यह परदान-स्वरूप होता है, क्योंकि यह सभी मनुष्यों की जन्मजात

योगशास्त्रों को समझता है और कंट-चालक की भाँति प्रत्येक को उस पर बल्दी से पहुँचा देता है।

तीसरी यात्रा में यह 'पूर्ण मानव' अस्मा ध्यान परमात्मा के प्राप्ति पर या तो देशदूत के रूप में या आध्यात्मिक गुरु (शेख) के रूप में देता है और करने को उन लोगों पर प्रकट करता है जो प्रत्यक्षापूर्वक अपनी अन्तराक्तियों से मुक्त हो जाते हैं। वह प्रत्येक व्यक्ति पर उसकी योग्यता अनुसार प्रकट होता है, यथा चिन्तनमय धर्म का मानने वाले के समस्त धर्मशास्त्री के रूप में पूरा चिन्तन का आनन्द न उग्रये हुए चिन्तनशील व्यक्ति के समस्त 'आदि' अर्थात् ब्रह्म शरीर के रूप में, आदि के समस्त वैयक्तिक सत्ता से पूर्णतः पर 'वाकित' के रूप में तथा 'वाकित' के समस्त 'कृत' के रूप में। यह छद्मवादियों की प्रत्येक धिक्काई का द्विज (अन्तिम सीमा) होता है और प्रत्येक भेरी के अन्येच्छी (साधकों) की अनुभूतियों पर विद्यालयन सामा से भी भाग बढ़ जाता है।

चौथी यात्रा का सम्बन्ध साधारणतः शारीरिक मृत्यु से होता है। पैगम्बर ने जब अपनी मृत्यु शय्या पर यह कहा कि 'मैं सर्वोच्च साधनों का पुत्र हूँ' तो उसका सत्य हुआ की श्राव था। जैसा कि अज्ञान ने गुरु पदों में इसका वर्णन किया है, उसका अनुसार हम यात्रा में पूर्ण मानव सभी देरी गुरुओं का प्राप्त करने के पश्चात् वह दण्ड बन जाता है जो परमात्मा को स्वयं उसका समान प्रशिक्षित करता है।

"ब्रह्म नय 'मित्रता' प्रकट हो,
तो मैं 'उस' विश्व आत्म से दोगुँ !
उसकी आत्म से न कि अपनी आत्म से,
क्योंकि 'उसका' विनाश स्वयं उसका धन नहीं देना।"

—इन्तुन घर ।।

छान्ता के भीतर के प्रसंग, विग्रह द्वारा यह देखा है वह ज्ञान तथा इसका स्वरूप, सब 'एक ही है।

सत्य की लोज करने वाले सृष्टी का अनुसरण करते हुये हम ऐसे स्थान पर पहुँच गये हैं जहाँ यात्री की गति कुण्ठित हो जाती है। उसकी प्रगति शायद ही कभी इतनी सरल और अमग होती हो जैसी इन पृष्ठों में प्रकट होती है। लोकोक्ति में वही गई नशे के बाद की घुमारी उन तीव्र शुक्ला और तीव्र भेदना के क्षणों के समानान्तर ही होती है जो कभी-कभी आह्लाद की निम्नतर और उच्चतर दशाओं के बीच के अन्तर को मिटाते हैं। ऐसी अनुभूति क वर्णन, जिसे ईसाई लेखकों ने आत्मा की अपकारमयी रात्रि कहा है, मुसलमान सन्तों की प्राय किस्ती भी जीवन क्या में मिल सकते हैं। जामी ने अपने प्राय 'नफहाव-उल्-उन्स' में एक जगह कहा है कि —

“कोइ एक दरपश, जो प्रसिद्ध सन्त शहाजुदीन मुहरबदी का शिष्य था, परमात्मा के एकत्व का चिंतन करते करते आह्लाद की महान् अवस्था में था और 'प्रना' की स्थिति में था। एक दिन वह रोने और विलाप करने लगा। शेर शहाजुदीन के यह पूछने पर कि उसे क्या दुःख है, उसने उत्तर दिया, देखिये, अनकत्व की भाषा ने मुझे 'एक' क दशन से वंचित कर दिया। मैं अस्वीकार कर दिया गया हूँ और अपनी पूर्वावस्था की पाने में असमर्थ हूँ। शेर ने बतलाया कि यह 'बक्रा' की स्थिति का प्रयामास है और उसकी वर्तमान दशा उसकी पहली दशा की अपेक्षा अधिक उच्च और उत्कृष्ट है।”

क्या परमात्मा में अन्तिम रूप से मिल जाने पर व्यक्तिगत सत्ता शेष रह जाती है? यदि व्यक्तिगत सत्ता का अर्थ परमात्मा से भिन्न—दिलग नहीं—चेतनामय अस्तित्व है तो अधिकांश वरिष्ठ मुसलमान मर्मी कहेंगे “नहीं!” जिस प्रकार से वर्षा की एक धूँ महासागर में मिलीन होकर नष्ट नहीं होती वरिष्ठ अपना स्वतंत्र अस्तित्व का देती है उसी प्रकार आत्मा (रूह) भी शरीर से निकल कर स्वयंप्राप्त परमात्मा का अभिन्न अंग बन जाती है। यह सच है कि जब सृष्टि लेखकगण मर्मी की मिलनानस्था की व्याख्या प्रेम और विराह के शब्दों में करते

हैं तो वे 'व्यक्तिगत सत्ता का विचार निया नहीं देत क्योंकि वास्तव में वे ऐसा कर ही नहीं सकते, किन्तु ऐसे रूप से उस विरहात्मका से, जिसमें सधी मद मिट जात है, अक्षर ही बनन नहीं हात । 'विरहात्मका' में साक्षात्कीर्ति मिल जाना धृष्टी पर एक दूसरे से प्रेम करने वाली आत्माओं के लिये उज्ज्वल-कोटि का कल्पनीय आनन्द है ।

‘कितना मुन्द होना वह चप बब हन, तू और मैं, महल में एक साथ बैठे होंगे,

तु और मेरी दा आइलिषा होगा दा मर होग, किन्तु आना एक ही होगी ।

बब तू और मैं साथ-साथ बागिका में आयेंगे,

बाग के रंग और चिड़ियों की चहक हमें अमरत्व प्रदान करेगी ।

स्वर्ग के तारे आकर हमें घूर घूर कर देंगे,

हम, तू और मैं, ठहरे उस 'वन्दना' को दिया देंगे ।

तू और मैं 'व्यक्तिगत सत्ता से परे हाकर आकाश का अमरत्व में मिल आयेंगे,

मृगतपूष बकवास से मुर्छित होकर तू और मैं आनन्दित होंगे ।

उस स्थान पर जहाँ तू और मैं ठबुक हास निगरेगे

स्वर्ग के समबमात पंख घाने पन्ना हवा से अना हवा करेगे ।

यह सबक बहा आरबर्ष है कि तू और मैं यहाँ एक ही पुष्प में बैठ हैं और साथ ही साथ ।

इस समय तू और मैं एक और घुसाखन हलो स्थानों पर हैं ।”

—बलापुरीन स्त्री

हनाई पारबान् अहमन्यता को यह मने हा विविध मत हा, सामान्य में अना माग लेने की आशा और मानव आना का अर-विष सत्ता का अमरत्व सत्य में वैसा ही गम्भीर और द-दुःख उन्हाह मर देत वैसा व्यक्तिगत जीवन के मरणासन्न चालू रहने में कष्ट विरहास करने वाले में हाता है । भौतिक जगत में मनुष्य के विरहास का

वर्णन करते हुये जलालुद्दीन उसके आगे बढ़कर आध्यात्मिक जगत में पहुँचने की पूर्व कल्पना करता है और अपने को परमात्मा-रूपी महा सागर में विलीन कर देने के लिये हृदय से निकली प्रार्थना करता है —

अव्यय अमाद भूदी आज़िब नवात गश्ती ।
 आ गह शुदी तो हेवाँ ई बरतू नू निहानस्त ॥
 गश्ती अज़ाँ पल इन्साँ बाइस्मों अक़लो ईमाँ ।
 धिनगर चे गिल शुदाँ तन नू जुस्वे खाक़दानस्त ॥
 ज़े इन्साँ चु सैर करदी बेशक़ प्ररिस्ता गरदी ।
 वे ई अमी अज़ाँ पस जायत बर आस्मानस्त ॥
 बाज़ अज़ प्ररिस्तगी हम बहुज़र बरो दयायम ।
 ता क़तरेय तो यहरे गरदद कि सद उमानस्त ॥
 बहुज़र अज़ी बलद तू मीगो जे खाने अहद तू ।
 गर पीर गश्त जिस्मत चे गुम चु आँ अयामस्त ॥

“मैं स्थितिज रूप में मरा और पीधा हुआ, पीध से मर कर मैं जानवर हुआ, पशु से भी मरकर मैं मानव हुआ, मैं क्यों टरूँ, मैं मरने से कम क्या हुआ ! किन्तु एक बार फिर मैं मनुष्य रूप में मरूँगा, ताकि मैं प्ररिस्तों के समबन्ध हो जाऊँ, किन्तु मुझे प्ररिस्तों से भी आगे बढ़ना पड़ेगा क्योंकि परमात्मा के सिवाय सभी नश्वर हैं । अपनी प्ररिस्त की आत्मा या परित्याग करने पर मैं यह हो जाऊंगा जिसपर किसी मन न क़मी बहना भी नहीं थी । मरा अस्तित्व मिट जान दा ! क्योंकि अनस्तित्व से ही यह घोषणा निश्चिनी है हम ‘उसर’ (परमात्मा के) पास लौटेंगे ।”

प्रोफेसर रेनाल्ड ए० निकोलसन मन्त्रिपरिषद्

प्रोफेसर रेनाल्ड एलीनि निकोलसन का नाम उन प्रसिद्ध योद्धा विद्वानों में एक आदर के साथ लिया जाता है जिन्होंने प्रारम्भ एवं अरबी साहित्यों का गम्भीर अध्ययन और अनुशासन करके उनके महत्वपूर्ण ग्रन्थों के सम्पादन तथा सुशोभित एवं सज्जकरण में विशय भाग लिया है तथा जिनके ऐसे कार्य के लिये हम उनके प्रति सदा आभारी रहेंगे। प्रोफेसर निकोलसन का जन्म सन् १८६८ ई० में हुआ था। उन्होंने कम्ब्रिज विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा प्राप्त की, प्रोफेसर ई० बी. प्राऊन की शिष्यता स्वीकार कर उनसे प्रारम्भिक-साहित्य पत्र तथा टीनिट की डिग्री अर्जित कर एवधीन से आनरेरी एल्० एल्० डी० की उपाधि भी उल्लब्ध कर ली। य. कम्ब्रिज विश्वविद्यालय में, सन् १९०२ ई० से लेकर १९२६ ई० तक प्रारम्भिक प्राध्यापक रह और फिर वहीं पर प्रोफेसर प्राऊन की जगह अरबी के अध्यापक भी हो गया। य. जिस जगह अरब अध्ययन में अग्रसर होते जाते थे वैसे ही अनेक प्रिय विषयों के सम्बन्ध में प्रायः लिखते भी जाते थे जिसका परिणाम यह हुआ कि न केवल इन्होंने कुछ रचनाओं की रचना कर डाली, अनेक नई प्रसिद्ध ग्रन्थों के अनुवाद और सविस्तर संस्करण भी प्रकाशित कर दिए, इन ग्रन्थों के अतिरिक्त इन्होंने समय-समय पर कृत्रिम उद्घृत नियम भी लिखे हैं जिनका महत्त्व कम नहीं ठहराया जा सकता। सन् १९४५ ई० के अगस्त में लगभग ६७ वर्षों की आयुपाकर इनका देहान्त हो गया। इनके प्रकाशित ग्रन्थों में से अधिकांश के नाम उनके सविस्तर विवरण के साथ, निम्नरूप में दिये जा सकते हैं —

(१) ऐमेरिट्ट पोपम ग्रान्दी दावान इ इम्पे सपरीज (कम्ब्रिज यूनि-
वर्सिटी प्रेस, १८६८) जिसमें प्रसिद्ध नीलना बहालुर्न रानी रचित

फविताओं के समूह से विशिष्ट रचनाओं का चुनकर उन्हें साधुवाद प्रकाशित किया गया है। इस पुस्तक का एक आलोचनात्मक परिचय रवूर् में, 'इन्तज़ाम दीवान शम्सतपरेज़' के नाम से गोरखपुर के 'आसी प्रेस' से छपा है और इसके लेखक कोई अब्दुल मालिक 'आरसी' नाम के साजन हैं जिन्होंने प्रोफेसर निकोलसन के साथ पत्र व्यवहार भी किया था।

(२) प्रसिद्ध सूफी कवि फरीदुद्दीन अक्षर के आरसी ग्रन्थ "तज़क़िआतुल औलिया" की आलोचनात्मक विस्तृत व्याख्या जो, सन् १९०५ ई० में अंग्रेजी भाषा के माध्यम से लिली बाकर, लंदन से प्रकाशित हुई है।

(३) ए लिटरेरी हिन्दी आफ् दी अरम्ब—जो ई० जी० ब्राउन की हिस्ट्री आफ् पर्सियन लिट्रेचर के आदर्श पर लिखित है।

(४) उमर रस्याम की "रुबाइयात" का अंग्रेजी अनुवाद जो लंदन से सन् १९११ ई० में प्रकाशित हुआ है।

(५) सूफी कवि महीउद्दीन रज़्ज अरसी के अरसी ग्रन्थ 'अल् अशवाक' की अरबी मज़ल्लों का अंग्रेजी में प्रायः अक्षरशः अनुवाद जिसमें प्रोफेसर निकोलसन ने उक्त भाषार्थ का भी विवरण दे दिया है जिसे मूल रचयिता ने लिखा था। यह भी लंदन से सन् १९११ ई० में छपी है।

(६) सूरीमत पर आरसी में लिखी गई प्रसिद्ध पुस्तक 'कसुल मह जून' का अंग्रेजी अनुवाद। इसका मूल लेखक अल् हुजरी था और यह पुस्तक भी सन् १९११ ई० में ही लंदन से प्रकाशित हुई है।

(७) 'दी मिस्टिक ऑफ् इस्लाम' (लंदन, १९१४) जो सूरीमत की स्पष्ट व्याख्या करने वाली पुस्तक है। इसे प्रोफेसर निकोलसन ने अरबों की भाषाओं का अध्ययन एवं चिन्तन के फलस्वरूप अंग्रेजी में लिखा है और प्रस्तुत पुस्तक इसी का हिन्दी अनुवाद है।

(८) अल्सर्वाज की पुस्तक 'किताब अल् सुना' जो मूलतः अरबी भाषा में थी उसकी प्रोफेसर निकोलसन ने एक आलोचनात्मक व्याख्या लिखी है तथा उक्त, उम्दकोर्रादि कद, महत्वपूर्ण अंगों के साथ, उहानि लंदन से ही सन् १९१४ ई० में प्रकाशित किया।

(६) डाक्टर सर मुहम्मद इकबाल के फ़ारसी ग्रन्थ “असतारे मुदी” का भी अंग्रेजी अनुवाद करके उन्होंने इसे १९२२ ई० में लंदन से प्रकाशित कराया है और उसके प्रारम्भ में मूल लेखक की विचारधारा के सम्बन्ध में एक भूमिका भी जोड़ दी है।

(१०) उन्होंने इसी प्रकार इब्न अब्दुल्लही के ग्रन्थ ‘तारखनामा’ का भी अंग्रेजी अनुवाद करके उसे सन् १९२१ ई० में लंदन में छापाया है।

(११) उन्होंने अंग्रेजी में ‘इस्लामी अर्थशास्त्र’ के विषय में भी एक पुस्तक लिखी है और उस सन् १९२१ ई० में केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस से प्रकाशित किया है।

(१२) इसी प्रकार उन्होंने एक अन्य पुस्तक ‘स्टडीज़ इन इस्लामिक मिस्तिरिज़म’ के नाम से भी लिखी है और उस भी उन्होंने सन् १९२१ ई० में केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस से प्रकाशित किया है।

(१३) उन्होंने एक और भी ऐसी ही पुस्तक ‘पूर्वो देसो’ के विषय में अंग्रेजी में लिखकर उस प्रोफ़सर ई० बी० ब्राऊन की ई० बी० यंग गाँठ के अन्तर्गत सन् १९२२ ई० में केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस से प्रकाशित कराया है।

(१४) कतिपय सुनी हुई कविताओं तथा गद्यमय अर्थों का अंग्रेजी अनुवाद करके उन्होंने उसे सन् १९२२ ई० में केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस से ही छपाया है और यह पुस्तक भी कम महत्व की नहीं रही वा सफ़ती।

(१५) ‘दी आइडिया आफ़ परखानाज़िती इन सूरिज़म’ प्रोफ़सर निबोल्सन के उन तीन भाष्यों का संग्रह है जिन्हें उन्होंने लंदन विश्वविद्यालय में दिया था तथा जो केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस से ही सन् १९२३ ई० में प्रकाशित है।

(१६) प्रोफ़सर निबोल्सन का सबसे बड़ा ग्रन्थ यह है जो नीमाना हनी की प्रसिद्ध ‘मसनवी’ का अंग्रेजी भाषान्तर है। इस प्रष्टुत करने

जो उन्होंने बड़ा परिश्रम किया तथा इसे आठ भागों में प्रकाशित करने का सफल किया था।

(१७) 'रूमी पोयट एण्ड मिस्टिक' जिसमें उन्होंने मौलाना रूमी की चुनी हुई रचनाओं का अनुवाद 'भूमिका' एवं टिप्पणियों के साथ, प्रस्तुत करके प्रकाशित करना चाहा था, किन्तु जो उनकी मृत्यु हो जाने पर सन् १९५५ ई० में लंडन में ही प्रकाशित हुआ।

(१८) जनरल आफ् दी रायल एशियाटिक सोसाइटी (लंडन मार्च १९०६ ई.) में प्रकाशित 'हिस्टारिकल इन्वायरी कन्सर्निङ्ग दी ओरिएण्टल एण्ड डेविलरमेंट आफ् मूस्लिम' उनका वह निबंध जिसमें उन्होंने सूफीमत के स्वरूप उसमें आरम्भ एवं क्रमिक विकास आदि के विषय में बड़ी विद्वता के साथ लिखा है।

प्रोफसर निफोल्सन के प्रिय शिष्य एर मित्र डा० आर्थर जे आर्थरी ने, उनके उक्त निबंध के आधार पर टीका प्रिण्टी करने हुए बतलाया है कि सूफीमत के आरम्भ एवं क्रमिक विकास के विषय में उनकी धारणा का सागंश नव विभिन्न तथों पर आश्रित माना जा सकता है। इनमें से सर्व प्रथम यह है कि सूफीमत का, अपरोक्षानुभूतिवाद एवं मौनवादी के रूप में, उन सवास प्रधान प्रवृत्तियों से ही सामाजिक विकास हुआ था जो उम्मयद शासकों के समय में, इस्लाम के भीतर दीप्त पड़ी थी। इसी प्रकार, दूसरा यह कि यद्यपि उन्हे हम इसाइ धर्म द्वारा प्रभावित कह सकते हैं, फिर भी वह वस्तुतः इस्लाम की ही देन था। तीसरी बात यह है कि हिज्री सन् की दूसरी शताब्दी के अन्त तक सूफीमत के अन्तर्गत एक नवीन विचारधारा का प्रवेश होने लगा जिसका सम्बन्ध मारुत अन् करने के प्रयत्नों के साथ रहा, किन्तु जिसका स्वरूप इस्लाम के विन्यस्त एवं अज्ञान पूर्ण भी कहला सकता था। फिर हिज्री सन् की तीसरी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ही ऐसे विचार बहुत कुछ विकसित हो चले तथा सूफीमत के विराटि अंग तब बन गये। फिर यह भी कि जिस व्यक्ति ने इन भाष्यकाव्यों

का स्थाया रूप देने में सबसे अधिक भाग लिया वह निम्न का सूरी
 धू धलून था । इस सम्बन्ध में सूरी का यह कहा जा सकता है कि
 जिस ऐतिहासिक वातावरण के भीतर ऐसे मत का आरम्भ हुआ
 वह मीक दशन द्वारा अनुप्राणित रहा और इसका नव अस्तित्ववाद
 एवं नास्तिकवाद द्वारा प्रेरणा प्राप्त करना भी अत्यन्त स्वीकार किया
 जा सकता है । अतएव, उनका आटमा तर्क है कि सूरीनित्तव,
 ब्रह्मज्ञान वाले अथवा क नूलत मीक होने के कारण, वे ठकुर
 सवालवाद विचार जिन्हें पहले पहल अथवा यमी (गणवा) धलू
 विन्नामी ने प्रभाव दिया था, जाना जाता है कि अथवा मारत के सिद्ध
 हान हैं और 'जना' सचची विचार बौद्ध निराश्रय प्रभावित बन
 जाता है । उनका फिर अन्त में यह भी कहना है कि तीसरी द्विती
 शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सूरीनित्तव का एक सगठित सप्रचारमी वैचारिक
 गया जिसका उद्देशक, साधक तथा अनुयायक के नियम अनेक बन गए
 तथा यह प्रदर्शित करने के अन्त आरम्भ हो गए कि यह मत
 'कुरान' और हदीस पर आधारित है और इस प्रकार इस इस्लाम के
 विरोध नहीं कहा जा सकता ।

मोहम्मद निशोल्सन के अनुसार मत से अन्तर्गत सभी सहनत न
 हो और स्वयं उन्होंने भी अन्त में इस कुछ माता में परिवर्तित कर
 दिया था । परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उनका निशाना गणवर्तमान
 यवन्त अभ्यवहार, एवं चिन्तन के अन्तर्गत निश्चित किया गया था
 और इसका अन्त महत्व है ।

१—मास्टर आधार के अन्तर्गत अनेक इन्फोर्मेन्स एन्ड नॉ हिस्ट्री
 आफ् सूरीय (सं. १६८०) पृ. ४०४ ।

नामानुक्रम

अ	अबू हम्मा	५३
अखवार	१०७	अरफात ७८
अजान	५८	अरस्तू ६
अतसांतिक	१	अरस्तू का समयस्थित १०
अतार	६१	अरहत १४
अन्न	१३६	अल्लाह ४ १२ १३ १४ ३३
अनाक्रमन अथवा हेरिक	८८	३४ ३७ ३८ ४३ ६४ ६७
अनल-हक १२८ १३० १३१ १३३		७१ ८१ ८७ ८६
अफलातून	६ ५४	अल्लाह के बचन ४
अफीत या जिन	१०४	अल-शख अल-यूनानी ६
अकीक-उद्दीन अल तिलिम्सानी	८०	अल-हक ७०
१४२, १४३		अलाउद्दीन अतार १२३ १२४ १२६
अम्बाल	१०७	अतिक्रन्तता ५३
अम्बलाह अम्सारी	७६	अली सुतीश ७६ १३२
अबरार	१०७	अबी-सेना १२५
अबुलखैर अल अजना	५२	असाफरी ५
अबुल खीम इब्न-अन सम्याण	७६	अहम इब्न अलाफारी ६
अबुलहसन खुरजानी	७८ ११६	अहम उन-हक १
११७ ११८		अहवाल (हाल का बहवचन) १४ २३
अबू अब्दुल्लाह अम रात्री	४३	आ
अबू अब्दुल्लाह, मोमुनिवागी	१२४	आन्म १२६ १३६
अयअनी मिपी	१४	आन्म विभोरायस्था ५२
अद मय अल-मिराज	१३५	आयत कुरान की १७, ५४
अ-सई इब्न अबुलखैर ४१ ७७ १०३		आरिफ २४ ८२ १४३

भाह्याद (भावाविष्टावस्था)					ई	ई
४२	५०, ५१	५३	५४	५५	ईरान	१५
५६	६२	८८	१०२	१०६	ईसा का कास	७६ १३६
११४	११५	१२३	१२६		ईमा मसौह ७१	११६ १२६ १२१
१३०	१४४	१४५			ईमाई घम २ =	११ ६६ १० = १३०
	इ				ईसा रहस्यवा	७ १० ६०
इब्नील		८			उ	
इब्ने डाकनर		६७			उत्तलि	१०
इसिहान		१३६			उमर अयाम	८३
इम्मान		१२			ए	
इन्सानुल-कामिल		१ १			एकता (परमात्मा की)	६ ३५ ३६
इन्-अल धवारी		४३			एकत्व	१२ १३ ६८
इन्-अल-मरबा ७५	८८	८८	६०		एकदा	१०२
६६ १०६ १३३ १४३					एकान्तवाम	३ =
इम्नीस		८५			एरेरवरवा	१६
इबाहीम		१३१			एडवड मन	३७
इबाहीम इन्-अयम		११ १३			ऐ	
इमसन		६५			एस्पकस थाफ इस्लाम	३७
इजान		६१			पी	
इपाक		१३६ १४५			पीना	१०७
इल्हाम		६१ ६३			पीनिना	१०६
इल्हाम निज्जरी के	६२ ६३ ६४				पीनिना लिन्नाह	१०६
६५, ६६ ६७ ७३ ७४					ब	
इल्हाम यमु का	६४ ६५ ६६ ६७				कनीज धम-बान	१२४
इस्तिबान		१६			कयामन	३ ३१ ६० १०६
इस्मे-आजम		११			कमयोग	१५
इस्लामी रहस्यवा		१ २ ७			करामात (करामत)	१०६ १०६

बल्ब	५८	गबत	५०
करप धल-महजुष	४५ ५४	गोल्डब्रिहर	१३
कहर	१८ ८२	ख	
कागिरो	४	चितन के प्रकार	४६
काफिर	८ ८५ १२८	पीन	१२६
काया	४६ ७८ ६१ ११७	ज	
किताब धन-मुसा	२१ १ ५ ११३	जङ्गी बासगिर्दी	५६
१२५		जजयत	५०
किधमा	११६ ११७	जलानुहीन हमी	२० ५४ ५७ ५६
करव	१०७ १४२ १४३	८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६	
कुप्र	१८ १०६ ११० १ २	८७ ६ ६४ ८७ १०१, १ २	
कुद	१२४	१०३ १ ६ ११२ ११४ १२२	
करान ५ ४ १६ १७ १८ ४७ ४५		१३३ १३८ १३६ १४ १४५	
४७ ६० ७५ ७८ ८० ८४		जाउर	१३६
८ ६१ ६६ १ ६ १०६ १२१		जान स्कोटस इरिजेना	१०
कशरी	१ ६ ११३	जाविरी	८
कग प्रोर मुसा	६१	जामी १ ५६ ६६ ७ ७१ ६१	
स		१२३ १४४	
कवाजा हगन घत्तार	१२४	जिक	८ ३७ ४० ३८
गिय	११ ६८ ११ १११	जिक की परिभाषा	४०
गिरलन	४१	जिक की रीति	३८
गण	७६	जिना	८ २६
गुरजानी (देगिय भकुस हगन सर		जुन २८ २६ ४३ ७५ ७८ ६८ ११३	
बानी)		जूम नून	१० ५५ ६७ १००
गरागान	१२६ १४५	जोड	५०
ग		जान ५ १० १६ २४ ५६ ६६	
गुवामी	१६ ३८ ८७	६५ ६८ ७३ ८२ ८३	

शामी ५ ६ ६२ ६३ ६५ ७२	दीवान शम्मी लवरीज	८७
७५ ८० ८७ ८४ १०५	दन्त	३ ३१
ट	दवी प्रेम	८८
टाइपिंग	१० ४	न
ठा	मजान	०
ठापोनिमियस	१ ११ ६६	नज्म ३७ ३३ ४
ठ	नरम-बुरी	३३ ३४
ठगोहर	४५	नज्हात-उल-उल्ल
ठरीजन	२३	नमाज ३ ५०
विगुलयात्रा	२४	नरकामि ३ ८ ८५
थयी मिडान (Lo203)	७०	मध मज्जातूनी दशन १० ११ ६६
थक मिडान	७१	नवधमप्राप्ती ७७ ८८
थक्कुरी	६ ११ ७	ना ४४ ५३
थक्कुरी	३६	नाम्निबमत ११ १
थक्कुरी बग	१२०	नामि ६१
थापम थान्नेवन	४ १६	नामून १ ६
थापमा	८०	निडामुनीन गायोरा १०३
थानिध	६	निजराय ४८ ६१ ६२ ६३ ७५
थिरमोज	१२३	८ ११३ १४२
थियोमात्रिन्	३	नियम धीर सत्य ८
थ	निवाण	१४ ५१ १ ८
थरवरा	२७ ११ १७	निवेधामर १६
थरवरा एर कहाना	३४	निमियान १२
थरवरी के निवे नियम	३२	नज्हा १०३
ठाऊ घल-नाई	३०	नुरी १८, ४१ ४३ ८१ ६३
थान्ने	८६	नूर १३१
थि बग धीर हामराबिस	१०	नोरुज ३

प	क्रिस्च जेराल्ड	८३
पय २३ २४ २७ २८ ४१	पिरासत	४३
परवाताप १७	फिलो	१८
परमात्मा के प्रति प्रेम ८	फजल हज्ज ह्याद	८४
प्रकाश प्राप्ति १० ४२ ६५ ४८	फादिहूम	१०
प्रतिभासित दूरय २४	ब	
प्राध्यायाम २१ ४०	बका १४ ५१ १२८, १४२	
प्रारम्भवाद ५	बसदा २८ ५३ ५६ १३५	
प्रोबलस ६	बसगार १३६	
प्लोटिनस ६ १०२	बसु १३ ३५	
पाणिहृत्यवाद ५ ५६ ६२	बसरा ११	
पीर २६ १२१	बहुदेववाद ७३	
पेटाटूश १८	बाबा बूही ४८	
पैरम्बर (मुहम्मद साहब) ४ १८ २६	बाबीमन ७६	
३२ ३७ ४० ४४, ४५ ५८ ६ ७७	बायजोद बिस्ताफी १४ ४२ ४८ ५२	
८० ११४ १२२ १२४ १४३	६४ ६६ ६७ १ १ ६ ११३	
पैसागोरस ५४	११४ ११५ १३७	
पोरफिरी ६	बिस्ताम ६४	
प्रजौर १० ३१	बिथ ६१	
प्रता ११ १४ ४० ५० ५१, ५२	बुद्ध १३ १४	
१२४ १२८ १३३ १३६ १४०	बेकताशी ८१	
१४१ १४२ १६४	बेक्रीया १३ १५	
प्रता घम-प्रता ५१ ६८	बेयीसोनिया ११	
प्रता क्रिन्-ह्व २३	बीद घम ७ १३ १४, १५	
प्रबुल-अजना ६ ११८	५१	
पामम का जगन ८२	बीद मिष्टुपो १३	
	६६ बाउन, प्रोथर ६५	

म	मुराकबत (ध्यान)	४०
मक्का	११७ मुवहिनीन (मट्टैतवाली)	८०
मकामान	२३ २४ मुस मानी सन्तो की माया १६ २५ ६३	
मजसूब	१ ७ मुहम्मद अल्लाह का रसूल	७६
मजसुहीन शख	५६ मुहम्मद साहब १६ १७ ४३ ७० ६६	
मर्वा	७८ मुहम्मद इब्न-उत्थान	३३
मवाबिक	४८ मुहम्मद इब्न-बासी	३० ४६
मसनवों	२० ८२ ११५ १२७ मुहम्मद इब्न घनी हकीम	१०३
मसानी या यूबाइटी	६ मुक्तिपूजक	६ १४
माइन इजिप्शियन्स	३७ मुसा १३१	
मानी मानीयम	११ मुसा और खिख की कहानी ११० १११	
माय्या और गैलान	६१ मरी	११६
मारिकन	२४ ५८ ६१, १४२ मकहानह डी०बी०२ १८ १७ ३८ १२२	
मारिकन और इस्म का मोह	६१ मएहीनोनिपन	११
मारुक अल-करखी	११ मोमुस	१२४
मालिक इब्न-दीनार	३० मौन्ता शाह	१२२
मिस्टिक	२ य	
मिना	७८ यमान	४२
मिलनावरया	१२७, १४४ याकूब खिराजी	१०
मिलन की परिभाषा	१३७ १३८ युमुफ	८५
मुमजिदा	११२ युमुक व जुनैछा	१ १
मुमजिदन	५४ र	
मुदनालिश	७८ रज्जाम	६३
मुदबिनी	४ राबिया	३ २५ १००
मुरशि	२६ १२१ राहिब	८
मुरोशी	४ रिज डविहम	१५
मुरकाज	२३ ४१ रिजवान	१३६

रिना	३४	वेदान्त	७
रिफाई दरवश	१२	श	
रिलीजस माइफ एण्ड ऐंगीषुड इन	शकीक	३१ ३६	
इस्लाम	१२२	शरीमत	११० १३०
रुयातुल-कल्ब	४२	शरीमत धोर हकीकत ८०	१४१ १४२
रुमी (देखिये जसामुद्दीन रुमी)	शरीमत की वल्ली	६१	
रुह	१२ ३० ५८	शहाबुद्दीन सुहरवदी	१४४
रोजा	३	शाह अल-किरमानी	४४
ल		शिवसी २८ २९ ४० ४३ ४६ ५२	
साइलाह इस्लिमाह	५८	१०	
साहूत	१५८	शरध	१०६
मुनी मासिमा	१२८	शिम	५
सैता व मजनू	१०१ १५७	शाख	४६
व		शद्धिमाय	१
वक्कल	४६ १५३ १४	शय (गुरु)	१३ ५६ ६१ १६५
वज	५०	शयान	२७ ६१
वनी	१०६ १७ १०८ ११०	श	
वाकिफ	१३४ १४३	सबतीन	१३६
वासिन	११	सरधानुपायी	१
वाहिद हकीकत	१२	सत्तर हजार पन्नी वाला मिदान	१०
विधायामक	१६ १६ ३७ ६३ ६५	सनाननवायी मुसलमान	४ १८
म	१३८ १४३	सज	१०६ १०६ ११० ११
विवकवा	१६	सादेहवा	१६
विशामस्मान	२३	सन्ती की जीवनिया	५६
विरवातमवा	१४ १५ १६	सजा	२ ७८
विरवातमवानी	६ १८ २	समा	५० ५५ ५६ ७७
विलियम वि०	११५	समा के सर्वध में विचार	५६ ५७

सांभोत काशगर निवासी मौनाना १२५	सेमिटिक घम	७
साधक १५ २३ ४१	सोझिम	
साक्षिण्य विद्या ४८	सोमान्दी फार साहजिकत रिमच १०४	
साबो ११	स्फुट बार सुजली	१
सारा धल-यवनी ४४ ४५ ५०	ह	
सालिक ५	हक ५५ ० ३८ ६१ ६५ ६४ १३	
माह्य इल्ल मन्तुलाह ३८ ४४ ४७	हकीकत १ १६ ५४, ७३ ८४ ६१	
५५ १५०	हज ४८ ४८ ७८ ७८	
सिद्दाह ११	हमाम	१८
निर ५८ १३	हवीव	६६
मुद्रा ६० ६	हमाणन	६६
मुद्र ४	हन्ताज १५८ १ ६ १३० १ ०	
मुम्हान धन्ताह ८	१ ८	
मुलमान व धन्ताह १०१	हथ	११८
मुक (उन)	हाना	७८ ६१
मुका २ ६ १ १४ १६ ३	हानिड (भावागवाला)	५६
६ ६५	हाथा की कहानी	
मुरामन १ ० ६ १२ १ १५ १६	हाकिट (कवि)	७४ ८८
१८ ० ४४ ४४ ५० ७६	हापरोपिम	१०
७७ ६० ११	हान	५
मुरामन का भाविमवि १	हिन्	६१
मुरामन का प्रारमिह का	हुजवार ६ ७ ६४ ५४ ५५ ५६	
मुरामन की परिभाषाये १	५८ ६४ १०३ १ ६ १ ६ १५३	
मन भागिलान्त १ ०	हमन इल्ल ममूर १५८ १ ०	
मन जान ७१	हनरी मोर—	
मेन जान १ ७१	हिन्नीड—	

